ॐ

श्री दिगम्बरजैन मुनि नागसेन विरचित

तत्त्वानुशासन

पंडित गजाधरलालजी न्यायतीर्थकृत हिन्दी
अनुवादसहित

श्री वीरनिर्वाण सवत् २४८९ सन् १९६३

इति स्वतत्त्वं परिभाव्य वाङ्मयं
य एतदाख्याति श्रृणोति चादरात्।
करोति तस्मै परमार्थसंपदं
`स्वरुपसम्बोधन' पंचविंशतिः।।२५।।

श्रीमद्भट्टाकलंकदेवः।

स्वाध्यायाद् ध्यानमध्यास्तां
ध्यानात्स्वाध्यायमामनेत्।
ध्यानस्वाध्याय संपत्त्या
परमात्मा प्रकाशते।।८१।।

श्रीमन्नागसेन मुनिः

स्वरुप संबोधन ग्रन्थ के संस्कृत और हिंदी टीकाकार का परिचय।

जैन धर्म की विजय दुंदुंभी बजाने वाले श्रीमदाचार्य भट्टाकलंक देवका नाम कौन नहीं जानता। स्वरुप संबोधन उनकी ही रचना है। इस ग्रन्थ की संस्कृत टीका और हिंदी में भावार्थ लिखने वाले दिगम्बर जैन समाज के प्रसिद्ध विद्वान् स्याद्वादवारिधि आदि अनेक पदवियोंसे भूषित पं० खूबचन्दजी शास्त्री हैं। आपका जन्म पद्मावतीपुरवाल जातिमें एटा जिलेके बेरनी ग्राममें हुआ था। आपके पिताका नाम उदयराजजी था। आपने लगभग ७६ साल मनुष्य पर्याय में विताकर ता० ३१ मई सन् १९६१ को देवपर्याय प्राप्त की। मनुष्य जन्म पाकर आपने जैन शास्त्रोंका अपरिमित ज्ञान संपादन किया। अनेक ग्रन्थों की संस्कृत-हिंदी टीकाएं कीं जिनमें अनगार धर्मामृत, ध्यायदीपिका, तत्त्वार्थाधिगम सूत्र, गोम्मटसार जीवकांड, रत्नत्रयचंद्रिका, स्वरुपसंबोधन मुख्य हैं।

इन ग्रन्थों के द्वारा पंडितजी सदा ज्ञानदानका कार्य करते रहनेसे जीवित रहेंगे। उनका पार्थिव औदारिक शरीर नष्ट हो गया है परन्तु यश और ग्रंथ रुप शरीर सदा वर्तमान रहेगा। स्वरुपसंबोधन स्याद्वाद पद्धति से आत्माके स्वरुपको बतलाने वाला ग्रन्थ है। इसमें केवल पच्चीस श्लोक हैं। आत्मामें अनेक अन्त (धर्म) हैं उनका निदर्शन भलीभांति इसमें किया गया है।

इसी आत्माके शुद्ध स्वरुप की प्राप्ति किस प्रकार हो सक्ती है इसको बतलाने वाला दूसरा ग्रन्थ है।

तत्त्वानुशासन

इस ग्रन्थके कर्ता दि० मुनिराज नागसेन हैं, ग्रन्थके अन्तमें वे अपने दीक्षा-गुरुका नाम विजयदेव और विद्या गुरुओंका नाम वीरचन्द्रदेव, शुभचंद्रदेव तथा महेंद्रदेव बतलाते हैं। अपने संघ या गण गच्छादिके विषयमें उनका मौन है। अपने समयका वे उल्लेख नहीं करते हैं। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि वे विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीसे पहले हुए हैं। क्योंकि पण्डितवर आशाधरजी इष्टोपदेशकी हीका में, इस ग्रन्थके अनेक श्लोक, `उक्तंच' रुपमें उद्धृत करते हैं। उदाहरणके लिये तत्त्वानुशासनके १९६ और १९७ नम्बरके श्लोक देखिये। पं० आशाधरजीने जैसा कि स्वयं बतलाया है-विक्रम संवत् १२८५ के पहले इष्टोपदेशकी टीका लिखी है। अतः तत्त्वानुशासनके कर्ता इससे भी पहले हुए हैं। मुनि नागसेनके अन्य किसी ग्रन्थसे हम परिचित नहीं हैं।

इसका हिंदी अनुवाद स्व० पं० गजाधर लालजी न्यायतीर्थ ने श्रीवीर सं. २४४७ में किया था और इसी संस्था द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित किया गया था। अब अलभ्य होने से दूसरी बार प्रकाशित किया गया है।

पंडित गजाधरलालजी का जन्म आगरा जिलेके जटौंआ ग्राममें हुआ था पिताका नाम लाला चुन्नीलालजी जैन पद्मावती पुरवाल था।

आपने पद्मनंदि पंच विंशतिका श्रेणिक चरित्र, तत्त्वार्थ राजवार्तिकालंकार ४ अध्याय, बिमलपुराण मल्लिनाथ पुराण आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थोंका हिन्दी में अनुवाद किया। इस संस्था के आप सात साल तक सहायक महामन्त्री रहे। आपका स्वर्गवास लगभग सन् १९३३ में बंबई में हुआ।

संस्थाका परिचय

यह संस्था सन् १९१३ में बनारस में स्थापित हुई थी। इसका नाम जैनधर्मप्रचारिणी सभा था। इसके बाद इसका नाम भारतीयजैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था बदल गया और स्थान बनारसकी जगह कलकत्ता हो गया। तबसे सन् १९५५ तक कलकत्तामें रह कर अनेक बड़े बडे शास्त्रोंका प्रकाशन इससंस्थाने किया।

सन् १९५६ में कलकत्ता से यह संस्था श्रीमहावीरजी लाई गई। १९५७ में इसका नाम श्री शान्तिसागर जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था स्वर्गत आचार्य श्रीवीरसागर जी महाराजकी आज्ञासे कर दिया गया और तबसे इसकी उन्नति दिनपर दिन हो रही है। संस्थाका निजी भवन श्रीमहावीर जी (राजस्थान) में गंभीर नदी के पूर्व तट पर बनगया है। इसी में पवित्र प्रेस, पुस्तकालय, प्रचार कार्यालय स्थित हैं।

ब्रह्मचर्याश्रम, सदाचार विद्यालय, छात्रावास बनानेकी योजना विचाराधीन है। आशा है समाज के धार्मिक व्यक्ति दिन पर दिन अधिक अधिक सहायता दे कर इस कार्यको उन्नत करेंगे।

धन्यवाद

संस्थाके ट्रष्टी और सदा उन्नति करने में दत्तचित्त रहने वाले ब्रह्मचारी सूरजमलजी की सत्प्रेरणासे ब्रह्मचारिणी पन्नी बाई ने सात सौ रुपये प्रदान किये हैं इसी द्रव्यसे दोनों ग्रन्थोंका प्रकाशन किया गया है। अतः दाता और प्रेरक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है अन्य लोग भी इसी प्रकार जिनवाणी प्रचार में सहायक होंगे।

सावनवदी १२ — ब्र० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ

वीर सं० २४८९ — महामन्त्री-संस्था

द्रव्य-प्रदात्री का परिचय एवं आभार-प्रदर्शन

ब्रह्मचारिणी पन्नीबाई का जन्म डेह (मारवाड) में हुआ था। आपके पिता का नाम लालचंद जी पहाडे और माता का नाम गुलाब बाई था। आपका विवाह संस्कार लाडनूं निवासी त्रिलोकचंदजी कासलीवाल के साथ हुआ था। किन्तु विधिवशात् छह महीने के बाद ही वैधव्य का योग प्राप्त हो गया था। तभी से आपकी भावना धार्मिक कार्यों में रही। सौभाग्यवश परम पूज्य आचार्य श्री १०८ श्री वीरसागर जी महाराज नागौर पधारे तभी उन्हीं के पास आपने सप्तम प्रतिमा के व्रत लिए थे। अभी आपकी उम्र साठवर्ष की है। आप बडी धर्मात्मा एवं सरल चित्त हैं। आपने यह स्वरुप संबोधन नामक ग्रन्थ श्री विद्यावा रिधि विद्यावाचस्पति धर्मदिवाकर स्वर्गीय पं० खूबचन्दजीशास्त्रीजी कृत संस्कृत टीका और हिन्दी टीका सहित तथा तत्त्वानुशासन मुनि श्री नागसेन कृत स्व० पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ कृत हिन्दी अर्थ सहित प्रकाशित कर जनता का बडा भारी उपकार किया है। अतः आपके हम बहुत आभारी हैं।

स्वाध्याय प्रेमी बन्धुओं से निवेदन है कि इन ग्रन्थों का अवश्य हो स्वाध्याय करें। और आप भी ब्रह्मचारिणीजी बाई का अनुकरण कर अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करें।

ब्र० सूरजमल जैन

(आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के पट्टाधीश
आचार्य श्री शिवसागर जी के संघस्थ)

श्रीमद्-भट्टाकलंक देव

यह आचार्य दिगम्बर जैन समाज में अतिविश्रुत हैं। ये विक्रम संवतकी ९ वीं शताब्दी में उपस्थित थे ऐसा शिलालेखों तथा उस समय के राजाओंकी इतिहास सामिग्री देखनेसे प्रमाणित होता है। ये तर्क शास्त्र धर्मशास्त्र के प्रगाढ़ विद्वान् थे। आपकी विद्वत्ताने जैनधर्मानुयायी जनोंकी रक्षा की, बौद्ध धर्मका प्रभाव अवरुद्ध हुआ। आपने बडे बडे अनेक ग्रंथोंकी रचना की जिनके नाम नीचे दिये जाते हैं-

१-अष्टशती-श्रीआचार्य समंतभद्र स्वामी विरचित
देवागमस्तोत्र की टीका
२-तत्त्वार्थराजवार्तिकालंकार-भगवदुमास्वामि
विरचित तत्त्वार्थसूत्रकी बडी टीका
३-न्यायविनिश्चय-न्यायका स्वतंत्रग्रन्थ
४-लधीयस्त्रगम्-प्रमाण नय स्याद्वाद का विशद विवेचन
५-स्वरुप संबोधन-आत्माके अनेक धर्मोंका वर्णन करने
वाला ग्रंथ है।
६-वृहत्त्रयम्-यह अप्रकाशित है।
७-न्याय चूलिका-अप्राप्य
८-अकलंक स्तोत्र-देवका स्वरुप विवेचन इसमें है।

इनके सिवा अन्य ग्रंथ भी हो सक्ते हैं क्योंकि जैन शास्त्र भंडार अभीतक संपूर्ण प्रकाशमें नही आये हैं।

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

तत्त्वानुशासन।

(भाषानुवाद सहित)

सिद्धस्वार्थानशेषार्थस्वरुपस्योपदेशकान्।
परापरगुरुन्नत्वा वक्ष्ये तत्त्वानुशासनं।।१।।

जिन्होंने अपने शुद्ध आत्माको सिद्ध कर लिया है और समस्त पदार्थोंके स्वरुपका उपदेश दिया है ऐसे प्राचीन आर्वाचीन समस्त गुरुओंको नमस्कार कर मैं (श्रीमन्नागसेनमुनि) तत्त्वानुशासन नामके ग्रंथको कहता हूं।।१।।

अस्ति वास्तवसर्वज्ञः सर्वगीर्वाणबंदितः।
घातिकर्मक्षयोद्भूतस्पष्टानंतचतुष्टयः।।२।।

घातिया कर्मोके नष्ट होनेसे जिन्हें अनेत चतुष्टय स्पष्ट रीतिसे प्रगट होगये हैं और जो समस्त इन्द्रादि देवों द्वारा वंद्यनीय है ऐसा कोई न कोई वास्तविक सर्वज्ञ इस संसारमें अवश्य है।।२।।

तापत्रयोपतप्तेभ्यो भव्येभ्यः शिवशर्मणे।
तत्त्वं हेयमुपादेयमिति द्वे धाभ्यधादसौ।।३।।

उन्हीं सर्वज्ञ देवने तीनों तरहके संतापोंसे तपाये हुए भव्य जीवोंको मोक्षरुप कल्याण प्राप्त करनेके लिये दो प्रकारके तत्त्वोंका उपदेश दिया है। एक हेय अर्थात् छोडने योग्य और दूसरा उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य।।३।।

बंधो निबंधनं चास्य हेयमित्युपदर्शितं।
हेयं स्याद् दुःखसुखयोर्यस्म द्वीजमिद्वं द्वयं।।४।।

उन्होंने बंध और बंधके कारणोंको इस जीवके लिये हेय तत्त्व अर्थात् छोडने योग्य बतलाया है इसका कारण यह है कि ये दोनों ही तत्त्व (बंध और बंधके कारण) सुख (सुख सरीखा लगने वाले इन्द्रिय सुख) दुःखके कारण हैं और इसीलिये हेय गिने जाते हैं ।।४।।

मोक्षस्तत्कारणं चैतदुपादेयमुदाहृतं।
उपादेयं सुखं यस्मादस्मादाविर्भविष्यति।।५।।

इसी प्रकार मोक्ष और मोक्षके कारणोंको उपादेय तत्त्व बतलाया है इसका कारण यह है कि मोक्ष और मोक्षके कारणोंसे वास्तविक सुख प्रगट होता है इसलिये वे दोनों ही उपादेय तत्त्व माने जाते हैं।।५।।

तत्र बंधः स हेतुभ्यो यः संश्लेषः परस्परं।
जीवकर्मप्रदेशानां स प्रसिद्धश्चतुर्विधः।।६।।

अपने निश्चित कारणोंके द्वारा जो जीव और कर्मोंके प्रदेश परस्पर

मिल जाते हैं उसको बन्ध कहते हैं वह बन्ध चार प्रकारसे प्रसिद्ध हैं। प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश।।६।।

बंधस्य कार्यः संसारः सर्वदुःखप्रदोंऽगिनां।
द्रव्यक्षेत्रादिभेदेन स चानेकविधः स्मृतः।।७।।

इसी बन्धका कार्य यह संसार है जो कि जीवोंको सब तरहके दुख देनेवाला है। यही संसार द्रव्य क्षेत्र आदि के (द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव) के भेदसे अनेक तरहका कहा जाता है।।७।।

स्युर्मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणि समासतः।
बंधस्य हेतवोऽन्यस्तु त्रयाणामेव विस्तरः।।८।।

मिथ्या दर्शन मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र ये ही तीन संक्षेपसे बन्ध के कारण हैं बाकी और सब (बन्धके अन्य कारण) इन्हीं तीनोंके भेद प्रभेद समझने चाहिये।।८।।

अन्यथावस्थितेष्वर्थेष्वन्यथैव रुचिर्नृणां।
दृष्टिमोहोदयान्मोहो मिथ्यार्दशनमुष्यते।।९।।

जो पदार्थ किसी भी हालतमें मौजूद है उनमें दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे मनुष्यका विश्वास वा उनकी श्रद्धा रुचि भिन्न रीतिसे होजाय अर्थात् वे कुछका कुछ विश्वास करलें तो उनके उस मिथ्या विश्वासको मोह वा मिथ्या दर्शन कहते हैं।।९।।

ज्ञानावृत्युदयादर्थेष्वन्यथाधिगमो भ्रमः।
अज्ञानं संशयश्चेति मिथ्याज्ञानमिह त्रिधा।।१०।।

ज्ञानावरण कर्मके उदयसे पदार्थोंमें मिथ्याज्ञान होनेको मिथ्याज्ञान

कहते हैं वह मिथ्याज्ञान भ्रम [अनध्यवसाय] अज्ञान [विपरीत ज्ञान] और संशयके भेदसे तीन प्रकारका कहा जाता है।।१०।।

वृत्तिमोहोदयाज्जन्तोः कषायवशवर्त्तिनः।
योगप्रवृत्तिरशुभा मिथ्याचरित्रमूचिरे।।११।।

चारित्र मोहनीय कर्मके उदयसे इस जीवके कषायों के वश होकर योगोंकी (मन वचन कायकी) अशुभ प्रवृत्ति होती है उसको मिथ्या चारित्र कहते है।।११।।

बंधहेतुषु सर्वेषुमोहश्च प्राक् प्रकीर्तितः।
मिथ्याज्ञानं तु तस्यैव सचिवत्वमशिश्रियत्।।१२।।

ममाहंकारनामानौ सेनान्यौ तौ च तत्सुतौ।
यदायत्तः सुदुर्भेदो मोहव्यूहः प्रवर्तते।।१३।।

बन्धके जितने कारण हैं उसमें सबसे पहले मोह वा मिथ्यादर्शन ही कहा गया है। मिथ्याज्ञान तो केवल मंत्रीपनेका काम करता है अर्थात् मिथ्याज्ञान मिथ्या दर्शनका सहायक है। ममत्व और अहंकार ये दोनों उस मिथ्यादर्शन के पुत्र हैं और ये ही दोनों सेनापति हैं इन्हीकी अधीनता में यह मोहव्यूह [मिथ्या दर्शनकी सेनाकी व्यूह रचना] अत्यन्त दुर्भेद [जिसको कोई भी न भेद सके] हो रहा है ।।१२-१३।।

शश्वदनात्मीयेषु स्वतनुप्रमुखेषु कर्मजनितेषु।
आत्मीयाभिनिवेशो ममकारो मम यथा देहः।।१४।।

अपने शरीर आदि (पुत्र स्त्री धन धान्यादि) जो पदार्थ कर्मके

उदयसे प्राप्त हुए हैं और जो आत्मासे सदा भिन्न रहते हैं उनमें अपनापन मान लेना ममकार वा ममत्व कहलाता है जैसे यह शरीर मेरा है ऐसी वुद्धिको ममत्व कहते हैं।।१४।।

ये कर्मकृता भावाः परमार्थनयेन चात्मनो भिन्ना।
तत्रात्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहंयथा नृपतिः।।१५।।

इसी प्रकार जो आत्माके विभाव परिणाम कर्मोंके उदय से प्राप्त हुए हैं और निश्चयनयसे आत्मासे भिन्न हैं उनमें अपनापन मान लेना अहंकार कहलाता है जैसे मैं राजा हूँ।।१५।।

मिथ्याज्ञानान्वितान्मोहान्ममाहंकारसंभवः।
इमकाभ्यां तु जीवस्य रागो द्वेषस्तु जायते।।१६।।

मिथ्याज्ञानके साथ साथ होनेवाले मिथ्यादर्शनसे ममकार और अहंकार उत्पन्न होते हैं तथा ममकार और अहंकारसे इस जीवके राग द्वेष पैदा होता है।।१६।।

ताभ्यां पुनः कषायाः स्युर्नोकषायाश्च तन्मया।
तेभ्यो योगाः प्रवर्तन्ते ततः प्राणिवधादयः।।१७।।

तेभ्यः कर्माणि बध्यन्ते ततः सुगतिदुर्गती।
तत्र कायाः प्रजायन्ते सहजानीन्द्रियाणि च।।१८।।

राग तथा द्वेषसे कषाय प्रगट होती है और नोकषाय भी कषायरुप ही होते हैं अर्थात् कषायोंसे ही प्रगट होते हैं। उन कषाय और नोकषायोंसे ही योगोंकी प्रवृत्ति होती है, और योगोंकी प्रवृत्ति होनेसे जीवहिंसा झूठ चोरी आदि महापाप उत्पन्न होते हैं। उन पापोंसे कर्मों

का बन्ध होता है उन बंधे हुए कर्मोंके उदयसे सुगति तथा दुर्गति प्राप्त होती है उस सुगति तथा दुर्गति दोनों में शरीर उत्पन्न होते हैं और उन शरीरोंके साथ साथ इन्द्रियां प्रगट होती हैं।।१७-१८।।

तदर्थानिन्द्रियैर्गृह्णान् मुह्यति द्वेष्टि रज्यते।
ततो बंधो भ्रमत्येवं मोहव्यूहगतः पुमान्।।१९।।

उन स्पर्शन रसना आदि इंद्रियोंके द्वारा उनके विषय स्पर्श रस आदिको ग्रहण करता हुआ यह जीव मोहित होता है द्वेष करता है तथा मोहित होने और राग द्वेष करनेसे इस जीवके फिर कर्मोंका बंद होता है इस प्रकार मोहके व्यूहमें (मोहकी सेनाकी रचनामें) प्राप्त हुआ यह जीव सदा परिभ्रमण किया करता है।।१९।।

तस्मादेतस्य मोहस्य मिथ्याज्ञानस्य च द्विषः।
ममाहंकारयोश्चात्मन्विनाशाय कुरुद्यमं।।२०।।

इसलिये हे आत्मन् ! ये मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान दोनों ही तेरे शत्रु हैं अतएव इन दोनोंको नाश करनेके लिये तथा ममकार और अहंकारको नाश करनेके लिये तू उद्यम कर।।२०।।

बंधहेतुषु मुख्येषु नश्यत्सु क्रमशस्तव।
शेषोऽपि रागद्वेषादिबंधहेतुर्विनश्यति।।२१।।

मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान तथा ममकार और अहंकार बंधके मुख्य कारण हैं यदि ये नष्य हो जांयगे तो अनुक्रमसे बाकी बचे हुए राग द्वेष आदि बंधके कारण भी अवश्य नष्ट हो जायंगे।।२१।।

ततस्त्वं बंधहेतूनां समस्तानां विनाशतः।
बंधप्रणाशान्मुक्तः सन्न भ्रमिष्यसि संसृतौ।।२२।।

उन सब बंधके कारणोंके नष्ट होनेसे बंध भी नष्ट हो जायगा, बंधके नष्ट होनेसे तू मुक्त हो जायगा और मुक्त होने पर फिर तुझे इस संसारमें परिभ्रमण नहीं करना पडेगा।।२२।।

बंधहेतुविनाशस्तु मोक्षहेतुपरिग्रहात्।
परस्परविरुद्धत्वाच्छीतोष्णस्पर्शवत्तयोः।।२३।।

अथवा मोक्षके कारणोंको स्वीकार करनेसे (पालन व धारण करनेसे) बंधके कारणोंका नाश अवश्य होता है क्योंकि मोक्षके कारण और बंधके कारण ये दोनों ही शीत स्पर्श और उष्ण स्पर्शके समान परस्पर विरुद्ध हैं।।२३।।

स्यात्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रितयात्मकः।
मुक्तिहेतुर्जिनोपज्ञं निर्जरासंवरक्रियाः।।२४।।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता ही मोक्षका कारण है। इनके सिवाय निर्जरा और संवररुप क्रियाए भी श्री जिनेंद्रदेवने मोक्ष के कारणरुप बतलाई हैं।।२४।।

जीवादयो नवाप्यर्था ये यथा जिनभाषिताः।
ते तथैवेति या श्रद्धा सा सम्यग्दर्शनं स्मृतं।।२५।।

जीवादिक नौ पदार्थ श्री जिनेद्रदेवने जिस प्रकार कहे हैं उनकी उसी प्रकार श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।।२५।।

प्रमाणनयनिक्षेपैर्यो याथात्म्येन निश्चयः।
जीवादिषु पदार्थेषु सम्यग्ज्ञानं तदिष्यते।।२६।।

प्रमाण नय और निक्षेपोंके द्वारा जीवादिक पदार्थोंमें यथार्थ रीतिसे निश्चय करना सम्यग्ज्ञान कहलाता है।।२६।।

चेतसा वचसा तन्वा कृतानुमतकारितैः।
पापक्रियाणां यस्त्यागः सच्चारित्रमुषंति तद्।।२७।।

मनसे वचनसे शरीरसे तथा कृतकारित अनुमोदनासे जो पापरुप क्रियाओंका त्याग कर देता है वह उत्तम चारित्र कहलाता है ।।२७।।

मोक्षहेतुःपुनर्द्वेधा निश्चयव्यवहारतः।
तत्राद्यः साध्यरुपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनं।।२८।।

निश्चय और व्यवहारके भेदसे मोक्षके कारण दो प्रकारके हैं उनमेंसे पहिला अर्थात् निश्चयकारण साध्यरुप है और दूसरा व्यवहारकारण साधनरुप है अर्थात् व्यवहारसे निश्चय सिद्ध किया जाता है।।२८।।

अभिन्नकर्तृकर्मादिविषयो निश्चयो नयः।
व्यवहारनयो भिन्नकर्तृकर्माविगोचरः।।२९।।

जिसमें कर्ता कर्म आदि विषय सब अभिन्न हों वह निश्चयनय वा निश्चय मोक्षमार्ग गिना जाता है और जिसमें कर्ता कर्म आदि सब भिन्न हों वह व्यवहार नय वा व्यवहार मोक्षमार्ग कहलाता है ।।२९।।

धर्मादिश्रद्धान सम्यक्त्व ज्ञानमधिगमस्तेषां।
चरणं च तपसि चेष्टा व्यवहारान्मुक्तिहेतुरयं।।३०।।

धर्म तत्त्व आदिका यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, उन धर्म वा तत्त्वोंका जानना सम्यग्ज्ञान है और तपश्चरणमें अपनी चेष्टा करना अर्थात् अपनेमें अपने आत्माको लगाना सम्यक्चारित्र है इन तीनोंकी एकता ही व्यवहार नयसे मोक्षमार्ग कहलाता है।।३०।।

निश्चयनयेन भणितस्त्रिभिरेभिर्यःसमाहितो भिक्षुः।
नोपादत्ते किंचिन्न च मुञ्चति मोक्षहेतुरसौ।।३१।।

जो साधु इन ऊपर लिखे हुये सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित होकर न कुछ ग्रहण करता है और न कुछ छोडता है। भावार्थ-आत्मामें तल्लीन हो जाता है वह निश्चय नयसे मोक्षमार्ग गिना जाता है।।३१।।

यो मध्यस्थः पश्यतिजानात्यात्मानमात्मनात्मन्यात्मा।
दृगवगमचरणरुपरसनिश्चयान्मुक्तिहेतुरितिजिनोक्ति।।३२।।

श्रीजिनेंद्रदेवने उपदेश किया है कि जो सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्ररुप मध्यस्थ आत्मा अपने ही आत्माके द्वारा अपने ही आत्मामें अपने ही आत्माको जानता है और देखता है वह निश्चय नयसे मोक्षमार्ग गिना जाता है।।३२।।

स च मुक्तिहेतुरिद्धो ध्याने यस्मादवाप्यते द्विविधोऽपि।
तस्मादभ्यसन्तु ध्यानं सुधियःसदाप्यपास्यालस्यं।।३३।।

इस प्रकार ऊपर कहा हुआ दोनों प्रकारका पूज्य मोक्षमार्ग

नियमसे ध्यानमें ही प्राप्त होता है इसलिये बुद्धिमान लोगोंको आलस छोडकर सदा ध्यानका ही अभ्यास करना चाहिये।।३३।।

आर्त्तं रौद्रं च दुर्ध्यानं वर्जनीयमिदं सदा।
धर्म शुक्लं च सद्ध्यानमुपादेयं मुमुक्षुभिः।।३४।।

ध्यानके चार भेद हैं आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल इनमेंसे आर्तध्यान और रौद्रध्यान ये दोनों दुर्ध्यान (पाप के कारण) हैं इसलिए इनका सदा त्याग करना चाहिये तथा धर्म्यध्यान और शुक्ल ध्यान ये दोनों ही उत्तम ध्यान हैं इसलिये मोक्षकी इच्छा करनेवालोंको इनका अभ्यास सदा करते रहना चाहिये।।३४।।

वज्रसंहननोपेताः पूर्वश्रुतसमन्विताः।
दध्युःशुक्लमिहातीताः श्रेण्योरारोहणक्षमाः।।३५।।

जिनके शरीरका संहनन वज्रवृषम नाराच था, जो ग्यारह अंग और चौदह पूर्व श्रुतज्ञानको धारण करनेवाले थे तथा जो उपशमश्रेणी और क्षपकक्षेणी के चढनेके थे ऐसे चतुर्थकालमें होनेवाले कितने ही लोगोंने शुक्लध्यान धारण किया था।।३५।।

तादृक्सामग्र्यभावे तु ध्यातुं शुक्लमिहाक्षमान्।
ऐदंयुगीनानुद्दिश्य धर्मध्यानं प्रचक्ष्महे।।३६।।

परन्तु इस समय शुक्लध्यानके योग्य सामग्रीका अभाव होनेसे इस समय उत्पन्न होनेवाले जो लोग शुक्लध्यान धारण कर नहीं सकते उनके लिये अब धर्मध्यानका स्वरुप कहता हूं।।३६।।

ध्याता ध्यानं फलं ध्येयं यस्य यत्र यदा यथा।
इत्येतदत्र बोद्धव्यं ध्यातुकामेन योगिना।।३७।।

जो योगी ध्यान करना चाहता है उसे ध्याता (ध्यान करनेवाला) ध्यान, ध्यानका फल, ध्येय अर्थात् ध्यान करने योग्य पदार्थ तथा जिसका ध्यान करना चाहिये जिस जगह करना चाहिये, जिस समयमें करना चाहिये, और जिस रीतिसे करना चाहिये इन सब बातोंका विचार करना उचित है।।३७।।

गुप्तेन्द्रियमना ध्याता ध्येर्य वस्तु यथास्थितं।
एकाग्रचिंतनं ध्यानं निर्जरासंपरौ फलं।।३८।।

जिसकी इन्द्रियां और मन वशमें रहते हैं वह ध्याता अर्थात् ध्यान करने वाला कहा जाता है जो पदार्थ अपनी अवस्थामें मौजूद है वह ध्येय अर्थात् ध्यान करने योग्य गिना जाता है। एकाग्र चिंतवन करना अर्थात् अन्य सब पदार्थों के चिंतवनको छोडकर किसी एक ही पदार्थका चिंतवन करना ध्यान कहलाता है और कर्मोंकी निर्जरा होना तथा संवर होना उसका फल माना जाता है।।३८।।

देशः कालश्च सोऽन्वेष्य सा चावस्थानुगम्य तां।
यदा यत्र तथा ध्यानमपविध्नं प्रसिद्धयति।।३९।।

इसी प्रकार देश और कालको देखकर वह अवस्था भी देखनी चाहिये कि जिससे जिस जगह ध्यान किया जाय जिस समय में ध्यान किया जाय और जिस रीतिसे ध्यान किया जाय उसमें किसी प्रकारका विध्न न आवे अर्थात् वह ध्यान निर्विध्न रीतिसे सिद्ध हो ।।३९।।

इति संक्षेपतो ग्राह्यमष्टांगं योगसाधनं।
विवरीतुमदः किंचिदुष्यमानं निशम्यतां।।४०।।

इस प्रकार संक्षेपसे यह योग साधन आठ प्रकार से ग्रहण करना चाहिये। अब मैं इसी आठ प्रकारके ध्यानका विशेष वर्णन लिखता हूं उसे चित लगाकर सुनो।।४०।।

तत्रासन्नीभवेन्मुक्तिः किंचिदासाद्य कारणं।
विरक्तः कामभोगेभ्यस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः।।४१।।

अभ्येत्य सम्यगाचार्यं दीक्षां जैनेश्वरी श्रितः।
तपः संयमसम्पन्नः प्रमादरहिताशयः।।४२।।

सम्यग्निणीतजीवादिध्येयवस्तुव्यवस्थितिः।
आर्त्त रौद्रपरित्यागाल्लब्धचित्तप्रसत्तिकः।।४३।।

मुक्तलोकद्वयापेक्षः षोढाशेषपरीषहः।
अनुष्ठितक्रियायोगो ध्यानयोगे कृतोद्यमः।।४४।।

महासत्त्वः परित्यक्तदुर्लेश्याशुभभावनः।
इतीदृग्लक्षणो ध्याता धर्मध्यानस्य सम्मतः।।४५।।

उन सबमेंसे ध्याताका स्वरुप इस प्रकार है-मुक्त होना जिसके समीप आचुका है अर्थात् जो थोडे ही कालमें मुक्त होने वाला है, जो कुछ भी कारण पाकर काम भोगों से विरक्त हो गया है जिसने समस्त परिग्रहोंका त्याग कर दिया है, उत्तम आचार्यके समीप जाकर जिसने श्री जैनदीक्षा धारण कर ली है जो तप और संयमको अच्छी तरह पालन करता है, जिसका हृदय प्रमादों से सर्वथा रहित है जिसने ध्यान करने योग्य जीवादिक पदार्थों की अवस्था का अच्छी तरह निर्णय कर लिया है, आर्त ध्यान और रौद्र ध्यानके त्याग करनेसे जिसका चित्त सदा निर्मल रहता है जिसने इहलोक

और परलोक दोनों लोकों की अपेक्षा का त्याग कर दिया है जो समस्त परिषहोंको सहन कर चुका है जिसने समस्त क्रियायोगोंका अनुष्टान कर लिया है जो ध्यान धारण करनेके लिये सदा उद्यम करता रहता है जो महाशक्तिशाली है और जिसने अशुभ लेश्याओं और अशुभ भावनाओंका सर्वथा त्याग कर दिया है। इस प्रकारके सम्पूर्ण लक्षण जिसमें विद्यमान हैं वह धर्मध्यानके ध्यान करने योग्य ध्याता माना जाता है।।४१-४५।।

अप्रमत्तः प्रमत्तश्च सद्दृष्टिर्देशसंयतः।
धर्मध्यानस्य चत्वारस्तत्त्वार्थे स्वामिनः स्मृताः।।४६।।

तत्त्वार्थसूत्रमें अप्रमत्त सातवें गुणस्थान वाला प्रमत्त छटे गुणस्थानवाला अविरत सम्यग्दष्टि चौथे गुण स्थानवाला और देशसंयमी पांचवे गुणस्तानवाला इस प्रकार धर्म ध्यानके चार स्वामी माने हैं अर्थात् ये चारों तरहके जीव धर्मध्यान धारण कर सकते हैं।४६।

मुख्योपचारभेदेन धर्मध्यानमिह द्विधा।
अप्रमत्तेषु तन्मुख्यमितरेष्वौपचारिकं।।४७।।

मुख्य और उपचारके भेदसे धर्म्यध्यान दो प्रकारका है उनमेंसे अप्रमत्त गुणस्थानमें मुख्य होता है और बाकी तीन गुणस्थानोंमें औपचारिक होता है।।४७।।

द्रव्यक्षेत्रादिसामग्री ध्यानोत्पत्तौ यतस्त्रिधा।
ध्यातारस्त्रिविधास्तस्मात्तेषां ध्यानान्यपि त्रिधा।।४८।।

ध्यान धारण करनेके लिये द्रव्य क्षेत्र आदिकी सामीग्री तीन प्रकारकी है उत्तम मध्यम जधन्य इसलिये अर्थात् सामग्रीके भेदसे

ध्यान करनेवाले भी तीन प्रकार के हैं और उनके ध्यान भी तीन प्रकारके हैं।।४८।।

सामग्रीतः प्रकृष्टाया ध्यातरि ध्यानमुत्तमं।
स्याज्जधन्यं जधन्याया मध्यमायास्तु मध्यमं।।४९।।

यदि ध्यान करनेवालेको उत्कृष्ट सामग्री मिल जाय तो उसका ध्यान भी उत्तम कहा जाता है यदि उसे जधन्य सामग्री मिले तो उसका ध्यान जधन्य कहलाता है और यदि सामग्री मध्यम मिले तो उसका वह ध्यान भी मध्यम गिना जाता हैं।।४९।।

श्रुतेन विकलेनापि ध्याता स्यान्मनसा स्थिरः।
प्रबुद्धधीरधःश्रेण्योर्धर्मध्यानस्य सुश्रुतः।।५०।।

श्रेणी आरोहणके नीचे नीचे तक यदि विकसित बुद्धिवाला ध्यान करने योग्य पुरुष पूर्ण श्रुतज्ञानी न हो थोडेसे श्रुतज्ञानका जानकार हो तो भी वह मनको स्थिर कर सकता है और धर्मध्यानको धारण कर सकता है।।५०।।

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
तस्माद्यदनपेतं हि धर्म्यं तद्ध्यानमभ्यधुः।।५१।।

धर्मके ईश्वर गणधरादि देव सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको धर्म कहते हैं इसलिये जो उस रत्नत्रयरुप धर्मसे उत्पन्न हो उसे वे आचार्यगण धर्म्यध्यान कहते हैं।।५१।।

आत्मनः परिणामो यो मोहक्षोभविवर्जितः।
स च धर्मोनपेतं यत्तस्मात्तद्धर्म्यमित्यपि।।५२।।

अथवा मोह और क्षोभसे रहित जो आत्माका परिणाम है वह भी धर्म कहलाता है और उस धर्मसे उत्पन्न हुआ जो ध्यान है वह धर्म्यध्यान कहलाता है।।५२।।

शून्यीभवदिदं विश्वं स्वरुपेण धृतं यतः।
तस्माद्वस्तुस्वरुपं हि प्राहुर्धर्मं महर्षयः।।५३।।

शून्यताको प्राप्त हुआ यह संसार स्वरुपसे ही धारण किया जा रहा है, भावार्थ-पदार्थों के स्वरुपसे ही वह विश्व वा संसार कहलाता है विना पदार्थों के स्वरुप के वह कभी विश्व या संसार नहीं कहला सकता क्योंकि विना पदार्थोंके स्वरुपसे वह अलोकाकाशके समान शून्य कहलायगा इसलिये महर्षि लोग वस्तुके स्वरुपको ही धर्म कहते हैं।।५३।।

ततोऽनपेतं यज्ज्ञातं तद्धर्म्यं ध्यानमिष्यते।
धर्मो हि वस्तुयाथात्म्यामित्यार्षेऽप्यभिधानतः।।५४।।

उस वस्तुके स्वरुपसे जो उत्पन्न हो अथवा उसके द्वारा जो जाना जाय वह धर्म्यध्यान कहलाता है। तथा ऋषिप्रणीत आर्ष ग्रन्थोंमें वस्तुके यथार्थ स्वरुपको ही धर्म कहा है।।५४।।

यस्तूत्तमक्षमादिः स्याद्धर्मो दशतया परः।
ततोऽनपेतं यद्ध्यानं तद्वा धर्म्यमितीरितं।।५५।।

अथवा उत्तम क्षमा आदि जो दश प्रकारका धर्म माना गया है उससे उत्पन्न हुआ जो ध्यान है वह धर्म्य ध्यान कहलाता है ।।५५।।

एकाग्रचिंतारोधो यः परिस्पंदेन वर्जितः।
तद्ध्यानं निर्जराहेतुः संवरस्य च कारणं।।५६।।

जो ध्यान एकाग्रचिंताके निरोध रुप है अर्थात् किसी एक पदार्थके चिंतवनके द्वारा अन्य पदार्थोंके चिंतवन के निरोध करने रुप है और मन वचन कायके द्वारा होनेवाले परिस्पंदनसे (आत्माके प्रदेशोंके हलन चलनसे) रहित है वही ध्यान निर्जराका कारण और संवरका हेतु गिना जाता है।।५६।।

एकं प्रधानमित्याहुरग्रमालंबनं मुखं।
चिंतां स्मृतिं निरोधं तु तस्यास्तत्रैव वर्तनं।।५७।।

एक, प्रधान, अग्र आलंबन और मुख ये सब पर्याय वाचक शब्द हैं तथा चिंता, स्मृति, निरोध, और उसका उसी में तल्लीन रहना ये भी सब पर्याय वाचक शब्द हैं।।५७।।

द्रव्यपर्याययोर्मध्ये प्राधान्येन यदर्पितं।
तत्र चिंतानिरोधो यस्तद्ध्यानं बभणुर्जिना।।५८।।

द्रव्य और पर्यायमेंसे जिसको प्रधानता दी हो उसी में चिंताका निरोध करना अर्थात् अन्य सब चिंताओंको छोडकर उसीका चिंतवन करना, ध्यान कहलाता है ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है।।५८।।

एकाग्रग्रहणं चात्र वैयग्यविनिवृत्तये।
व्यग्रं ह्यज्ञानमेव स्याद्ध्यानमेकाग्रमुच्यते।।५९।।

यहां पर अर्थात् ध्यानके लक्षणमें एकाग्रताका ग्रहण, व्यग्रता वा चंचलताके दूर करनेके लिये किया गया है। अन्य चिंताओंको

छोडकर एक पदार्थका चिंतवन करना ही व्यग्रताका अभाव होना है। क्योंकि व्यग्रता अज्ञान है और एकाग्रताको ध्यान कहते हैं ।।५९।।

प्रत्याहृत्य यदा चिंतां नानालंबनवर्तिनीं।
एकालंबन एवैनां निरुणाद्धिविशुद्धधीः।।६०।।

तदास्य योगिनो योगश्चिंतैकाग्रनिरोधनं।
प्रसंख्यानं समाधिः स्याद्ध्यानं स्वेष्टफलप्रदं।।६१।।

जिस समय विशुद्ध बुद्धिवाला योगी किसी एक मुख्य पदार्थका अवलंबन कर अनेक पदार्थोंके अवलंबनमें रहनेवाली चिंताको दूरकर केवल उसी चिंताको (जिस एक मुख्य पदार्थको अवलंबनकर चिंतवन कर रहा है) रोकता है अर्थात् उसी एक पदार्थके चिंतवनको स्थिर रखता है उस समय उस योगीका वह चिंतवन योग कहलाता है उसीको चिंताकी एकाग्रता का निरोध कहते हैं, उसीको प्रसंख्यान कहते हैं, उसीको समाधि कहते हैं और वही आत्मा को इष्ट फल देनेवाला ध्यान कहलाता है।।६०-६१।।

अथवांगति जानातीत्यग्रमात्मा निरुक्तितः।
तत्त्वेषु चाग्रगणयत्वादसावग्रमिति स्मृतः।।६२।।

अथवा अंगतीति अग्रं अर्थात्-जो जाने वह अग्र कहलाता है इस निरुक्तिसे आत्माका ही नाम अग्र पडता है क्योंकि आत्मामें ही जाननेकी शक्ति है। इसके सिवाय सब तत्त्वोंमें भी आत्मा ही अग्रगण्य वा मुख्य माना जाता है इसलिये भी आत्माको ही अग्र कहते हैं।।६२।।

द्रव्यार्थिकनयादेकः केवलो वा तथोदितः।
अन्तःकरणवृत्तिस्तु चिंतारोधो नियंत्रणा।।६३।।

अभावो वा निरोधः स्यत्स च चिंतातरव्ययः।
एकचिंतात्मको यद्वा स्वसंविच्चिंतयोज्झितः।।६४।।

द्रव्यार्थिक नयसे यह आत्मा एकही है अथवा केवल ज्ञानी वा केवली होनेसे यह आत्मा केवल वा एक गिना जाता है अन्तःकरणकी वृत्तिको नियंत्रित करना अर्थात् उसे वशमें रखना चिंतारोध कहलाता है। अथवा अभाव को निरोध कहते हैं और अन्य चिंताओंका नाश होना ही वह अभाव वा निरोध कहलाता है। अथवा अन्य चिंताओंसे रहित जो एक चिंतात्मक एक चिंतारुप अपने आत्माका ज्ञान है वह भी एक अग्र आत्मा कहलाता है।।६३-६४।।

तत्रात्मन्यसहाये यच्चिंतायाः स्यान्निरोधनं।
तद्ध्यानं तदभावो वा स्वसंवित्तिमयश्च सः।।६५।।

उस असहायरुप एक आत्मामें जो चिंताका निरोध किया जाता है अर्थात् सब चिंताओंको छोडकर अन्तःकरण की प्रवृत्ति उसीमें नियंत्रित वा तल्लीन हो जाती है उसको ध्यान कहते हैं वही अभाव वा निरोध अर्थात् चिंताओंका अभाव वा नाश कहलाता है तथा उसीको निजज्ञानमय अपने ज्ञानमें तल्लीन हुआ आत्मा कहते हैं।।६५।।

श्रुतज्ञानमुदासीनं यथार्थमतिनिश्चलं।
स्वर्गापवर्गफलदं ध्यानमांतर्मुहूर्ततः।।६६।।

यह श्रुतज्ञानरुप, उदासीन, यथार्थ, अत्यंत निश्चल और स्वर्गमोक्षादि फल देनेवाला ध्यान अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।।६६।।

ध्यायते येन तद्ध्यानं यो ध्यायति स एव वा।
यत्र वा ध्यायते यद्वा ध्यातिर्वा ध्यानमिष्यते।।६७।।

जिसके द्वारा ध्यान किया जाय वह भी ध्यान है जो ध्यान वा चिंतवन किया जाता है वह भी ध्यान हैं, जिसमें ध्यान वा चिंतवन किया जाय वह भी ध्यान है और ध्यान करने वा चिन्तवन करनेमात्रको भी ध्यान कहते हैं।।६७।।

श्रुतक्षानेन मनसा यतो ध्यायन्ति योगिनः।
ततः स्थिरं मनो ध्यानं श्रुतज्ञानं च तात्त्विकं।।६८।।

योगी लोग श्रुतज्ञानरुप मनके द्वारा ही ध्यान करते हैं इसलिये श्रुतज्ञानरुप जो स्थिर मन है वही वास्तविक ध्यान कहलाता है ।।६८।।

ज्ञानादर्थांतरादात्मा तस्माज्ज्ञानं न चान्यतः।
एकं पूर्वापरीभूतं ज्ञानमात्मेति कीर्त्तितं।।६९।।

ज्ञानसे भिन्न आत्मा नही है और आत्मासे भिन्न ज्ञान नही है पूर्वापरीभूत एक ज्ञान ही आत्मा कहलाता है।।६९।।

ध्येयार्थालंबनं ध्यानं ध्यातुर्यस्मान्न भिद्यते।
द्रव्यार्थिकनयात्तस्माद्ध्यातैव ध्यानमुच्यते।।७०।।

ध्यान करने योग्य जो ध्येय पदार्थ हैं उनका अवलंबन करना चिन्तवन करना ध्यान कहलाता है तथा वह ध्यान द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे ध्यान करनेवाले ध्याता से कभी भिन्न नहीं होता है इस कारणसे ध्याताको ही ध्यान कह देते हैं।।७०।।

ध्यातरि ध्यायते ध्येयं यस्मान्निश्चयमाश्रितैः।
तस्मादिदमपि ध्यानं कर्माधिकरणद्वयं।।७१।।

निश्चयनयका आश्रय लेनेवाले पुरुषोंके द्वारा ध्यान करने योग्य जो ध्येय पदार्थ है उसका ध्यान करनेवाले आत्मामें ही ध्यान किया जाता है इसलिये कर्म (जिस पदार्थ का अवलंबन लेकर ध्यान किया जाता है) और अधिकरण (जिस आत्मामें ध्यान किया जाता है।) ये दोनों भी ध्यान ही कहलाते हैं।।७१।।

इष्टं ध्येये स्थिरा बुद्धिर्या स्यात्संतानवर्तिनी।
ज्ञानांतरापरामृष्टा सा ध्यातिर्ध्यानमीरिता।।७२।।

ध्यान करने योग्य जो स्थिर पदार्थ है उसमें अन्य ज्ञानका (अन्य पदार्थोंके ज्ञानका) स्पर्श न करनेवाली जो संतान रुप स्थिर बुद्धि है अर्थात् जो बुद्धि अनेक क्षण तक उसीमें स्थिर रहती है उसीको ध्याति वा ध्यान कहते हैं।।७२।।

एकं च कर्त्ता करणं कर्माधिकरणं फलं।
ध्यानमेवेदमखिलं निरुक्तं निश्चायन्नयात्।।७३।।

यदि निश्चय नयसे देखा जाय तो एक ध्यान ही कर्ता करण कर्म अधिकरण और फल इन रुप पडता है।।७३।।

स्वात्मानं स्वात्मनि स्वेन ध्यायेत्स्वस्मै स्वतौ यतः।
षट्कारकमयस्तस्माद्ध्यानमात्मैव निश्चयात्।।७४।।

इसका भी कराण यह है कि निश्चय नयसे यह आत्मा अपने ही आत्माके लिये अपने ही आत्मासे अपने ही आत्मा के द्वारा अपने

ही आत्मामें अपने ही आत्माका ध्यान करता है इसलिये इन छहों कारक रुप जो आत्मा है वही ध्यान कहलाता है।।७४।।

संगत्यागः कषायाणां निग्रहो व्रंतधारण।
मनोक्षाणां जयश्चेति सामग्री ध्यानजन्मने।।७५।।

परिग्रहोंका त्याग करना, कषायोंका निग्रह करना, व्रतोंका धारण करना तथा मन इन्द्रियोंका जीतना यह सब ध्यान धारण करनेकी सामग्री है।।७५।।

इंद्रियाणां प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च मनः प्रभुः।
मन एव जयेत्तस्माज्जिते तस्मिन् जितेन्द्रियः।।७६।।

इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति अथाव निवृत्तिमें मन ही स्वामी है सबसे पहिले मनको ही जीतना चाहिये क्योंकि मनके जीत लेने पर इन्द्रियोंका विजय अपने आप हो जाता है।।७६।।

ज्ञानवैराग्यरज्जूभ्यां नित्यमुत्पथवर्तिनः।
जितचित्तेन शक्यन्ते धर्तुमिन्द्रियवाजिनः।।७७।।

जिसने अपना चित्त जीत लिया है वह पुरुष सदा कुमार्गमें जानेवाले इन्द्रियरुपी घोडोंको ज्ञान और वैराग्यरुपी लगामकी दोनों रस्सियोंसे पकड सकता है- वशमें कर सकता है। भावार्थ-मनको वश करनेवाला पुरुष ज्ञान और वैराग्यके द्वारा इन्द्रियोंको भी वशमें करसकता है।।७७।।

येनोपायेन शक्येत सन्नियन्तुं चलं मनः।
स एवोपासनीयोऽत्र न चैव विरमेत्ततः।।७८।।

इस ध्यान धारण करनेके समय जिस उपायसे यह चंचल मन नियंत्रित किया जासके उसी उपायकी उपासना करनी चाहिये और फिर उस उपायसे कभी नहीं हटना चाहिये, अर्थात् उसी उपायको सदा काममें लाते रहना चाहिये।।७८।।

संचिंतयन्ननुप्रेक्षाः स्वाध्याये नित्यमुद्यतः।
जयत्येव मनः साधुरिन्द्रियार्थपराङ्मुखः।।७९।।

जो साधु, रुप रस आदि इन्द्रियोंके विषयोंसे सदा परान्मुख रहता है। वारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करता रहता है और स्वाध्याय करनेमें सदा उद्यमी रहता है वह मनको अवश्य जीतता है।।७९।।

स्वाध्यायः परमस्तावज्जपः पंचनमस्कृतेः।
पठनं वा जिनेन्द्रोक्तशास्त्रस्यैकग्राचेतसा।।८०।।

पंचनमस्कार मंत्रका जप करना अथवा एकाग्र चित्त होकर श्री जिनेंद्रदेवके कहे हुए शास्त्रोंका पठन पाठन करना परम स्वाध्याय कहलाता है।।८०।।

स्वाध्यायाद्ध्यानमध्यास्तां ध्यानात्स्वाध्यायमामनेद्।
ध्यानस्वाध्यायसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते।।८१।।

ऐसे स्वाध्यायसे ध्यानका अभ्यास होता है तथा ध्यानसे स्वाध्यायकी वृद्धि होती है और ध्यान तथा स्वाध्याय इन दोनों सम्पदाओंसे परमात्मा प्रकाशित होता है।।८१।।

येऽत्राहुर्न हि कालोऽयं ध्यानस्य ध्यायतामिति।
तेर्हन्मतानभिज्ञत्वं ख्यापयंत्यात्मनः स्वयं।।८२।।

जो लोग यह कहते हैं कि ध्यानका यह समय (कलियुग) नहीं है अर्थात् इस कालमें ध्यान नहीं हो सकता इसलिये इस कालमें ध्यान नहीं करना चाहिए वे लोग अपने आप ही अपने अरहंत देवके कहे हुए मतकी अजानकारीको प्रगट करते हैं।।८२।।

अत्रेदानी निषेधंति शुक्लध्यानं जिनोत्तमाः।
धर्म्यध्यानं पुनः प्राहुः श्रेणीभ्यां प्राग्विवार्त्तिनां।।८३।।

इस कलिकालमें जिनेन्द्रभगवानने शुक्ल ध्यानका निषेध किया है कि वह नहीं हो सकता परन्तु क्षपक और उपशमक श्रेणी जढनेवालोंसे पहिले धर्मध्यान तो कहा ही है। उसका होना तो बतलाया ही है।।८३।।

यत्पुनर्वज्रकायस्य धानमित्यागमे वचः।
श्रेणयोर्ध्यानं प्रतीयोक्तं तन्नाधस्तान्निषेधकं।।८४।।

वज्रबृषभनाराच संहननवालोंके ही ध्यान होता है ऐसा जो आगममें कहा हैं शुक्लध्यानके प्रति वचन है अर्थात् शुक्लध्यान वज्रवृषभनाराच संहननवालों के ही होता है और वह संहनन इस कलिकाल में होता नहीं है परन्तु श्रेणी चढ़नेवालों से नीचे जो ध्यान होता है वह तो होता ही है उसका वह वचन निषेधक कैसे हो सकता है ?।।८४।

ध्यातारश्चेन्न सन्त्यद्य श्रुतसागरपारगा :।
तत्किमल्पश्रुतैरन्यैर्न ध्यातव्यं स्वशक्तितः।।८५।।

इस कलिकालमें यदि शास्त्ररुपी समुद्रके पारको पहुँचे हुये मुनिगण नहीं हैं तो क्या अल्प शास्त्रों के जाननेवाले लोगोंको अपनी

अपनी शक्तिके अनुसार ध्यान न करना चाहिये ? धर्म्यध्यान सबको अपनी शक्त्यानुसार करना उचित है।।८५।।

चरितारो न चेत्सन्ति यथाख्यातस्य संप्रति।
तत्किमन्ये यथाशक्तिमाचरन्तु तपस्विनः।।८६।।

यदि इस समय यथाख्यात चारित्रको आचरण करनेवाले लोग नहीं है तो क्या अपनी अपनी शक्तिके अनुसार अन्य तप भी नहीं धारण करना चाहिये ? भावार्थ-ऊंचे दर्जेका यदा तप नहीं तप सकते, ध्यान नहीं कर सकते तो उसमें कुछ कम दर्जेका भी उत्तम तप या ध्यान भी क्या नहीं करना चाहिये ?।।८६।।

सम्यग्गुरुपदेशेन समभ्यम्यन्ननारतं।
धारणासौष्ठवाद्ध्यानं प्रत्ययानपि पश्यति।।८७।।

गुरुके उपदेशसे अच्छी तरह बराबर जो मनुष्य ध्यान का अभ्यास करता है वह निश्चयसे ध्यानके कारण और ध्यान को प्राप्त हो जाता है।।८७।।

यथाभ्यासेन शास्त्राणि स्थिराणि स्युर्महान्त्यपि।
तथा ध्यानमपिस्थैर्य्यं लभतोभ्यासवर्तिनां।।८८।।

जिस प्रकार अभ्यास करनेसे बडे २ शास्त्रोंका ज्ञान स्थिर हो जाता है उसी प्रकार अभ्यास करनेसे ध्यान भी स्थिर हो जाता है।।८८।।

यथोक्तलक्षणो ध्याता ध्यातुमुत्सहते यथा।
तदेव परिकर्म्मादौ कृत्वा ध्यातु धीरधीः।।८९।।

जिस प्रकार पूर्वमें कहे गये लक्षणवाला ध्याता ध्यान करनेमें उत्साहवान बना रहे उसी प्रकार बुद्धिमान पुरुषको परिकर्म आदिका सहारा ले ध्यान करना चाहिये।।८९।।

शून्यागारे गुहायां वा दिवा वा यदि वा निशि।
स्त्रीपशुक्लीबजीवानां क्षुद्राणामप्यगोचरे।।९०।।

अन्यत्र वा क्वचिद्देशे प्रशस्ते प्रासुके समे।
चेतनाचेतनाशेषध्यानविघ्नविवर्जिते।।९१।।

भूतले वा शिलापट्टे सुखासीनः स्थितोऽथवा।
सममृज्वायतं गात्रं निःकंपावयवं दधत्।।९२।।

नासाग्रन्यस्तनिष्पंदलोचनं मंदमुच्छ्वसन्।
द्वात्रिंशद्दाषनिर्मुक्तकायोत्सर्गव्यवस्थितः।।९३।।

प्रत्याहृत्याक्षलुंटाकांस्तदर्थेभ्यः प्रयत्नतः।
चिंतां चाकृष्य सर्वेभ्यो निरुध्य ध्येयवस्तुनि।।९४।।

निरस्तनिद्रो निर्भीतिर्निरालस्यो निरंतरं।
स्वरुपं पररुपं ध्यायदेतंर्विशुद्धये।।९५।।

किसी सूने मकान अथवा किसी गुफामें दिन में अथवा रात में तथा और भी किसी ऐसे स्थानमें जिसमें स्त्री पशु नपुन्सक जीव न जा सकें अथवा और भी कोई क्षुद्र प्राणी न जा सकें, जो स्थान प्रशंसनीय हो, प्रासुक वा निर्जीव हो, जो चेतन अचेतन आदिके द्वारा होनेवाले सब तरह के ध्यानों के विघ्नोंसे रहित हो ऐसा स्थान चाहे पृथ्वी हो चाहे शिला हो उस पर ध्यान करनेवाला सुख से बैठे

अथवा सीधा एकसा लम्बाई रुपमें खड़ा रहे शरीरको इस तरह रक्खे जिसमें शरीर के अवयव हिल न सकें, स्पंद रहित नेत्रों को नासिकाके अग्र भाग पर धारण करे, धीरे धीरे श्वास ले, बत्तीस दोषोंसे रहित कायोत्सर्ग धारण करे, इन्द्रिय रुपी लुटेरों को उनके रुप, रस, गन्ध आदि विषयोंसे बडे प्रयत्न से दूर रक्खे अन्य सब पदार्थों से अपना चिंतवन हटाकर केवल ध्यान करने योग्य किसी एक पदार्थ में अपना चिंतवन स्थिर रक्खे, वह ध्यान करने वाला निद्राको दूर करे भयको दूर करे और आलस्य को दूर करे तथा अपने अन्तरात्मा को शुद्ध करने के लिये सदा अपने आत्मा के स्वरुपको अथवा अन्य किसी पदार्थके स्वरुपको चिंतवन करे।।९०-९५।।

निश्चयाद् व्यवहाराच्च ध्यानं द्विविधमागमे।
स्वरुपालंबनं पूर्वं परालंबनमुत्तरं।।९६।।

शास्त्रों में निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का ध्यान बतलाया है उनमें से पहिला निश्चय ध्यान तो स्वरुपालंबन अर्थात् केवल अपने आत्मा को आलंबन लेकर होता है और दूसरा व्यवहार ध्यान परालंबन अर्थात् आत्मा के सिवाय अन्य पदार्थोंको आलंबन लेकर होता है।।९६।।

अभिन्नमाद्यमन्यत्तु भिन्नं तत्तावदुच्यते।
भिन्ने हि विहिताभ्यासोऽभिन्नं ध्यायत्यनाकुलः।।९७।।

इली प्रकार पहिला निश्चय ध्यान आत्मासे अभिन्न है और दूसरा भिन्न हैं। अब आगे भिन्न ध्यानको कहते हैं क्योंकि भिन्न ध्यानमें अभ्यास करके यह जीव निराकुल होकर अभिन्न ध्यान को कर

सकता है।।९७।।

आज्ञापायो विपाकं च संस्थानं भुवनस्य च।
यथागममविक्षिप्तचेतसा चिंतयेन्मुनिः।।९८।।

मुनियोंको आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाक विचय और लोकका संस्थान विचय इन चारों धर्म्यध्यानोंको शास्त्रोंमें लिखी हुई विधिके अनुसार निराकुल चित्तसे चिंतवन करना चाहिये।।९८।।

नाम च स्थापनं द्रव्यं भावश्चेति चतुर्विधं।
समस्तं व्यस्तमप्येतद्ध्ये यमध्यात्मवेदिभिः।।९९।।

अध्यात्मको जाननेवाले मुनियोंको समस्त और व्यस्त अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थ अथवा अलग अलग पदार्थ नाम स्थापना द्रव्य भाव चारों प्रकारसे ध्यान करना चाहिये।।९९।।

वाच्यस्य वाचकं नाम प्रतिमा स्थापना मता।
गुणपर्ययवद्द्रव्यं भावः स्याद् गुणपर्ययौ।।१००।।

वाक्यका जो वाचक है (जैसे अरहंत वाचक अर्हन् ऋषभदेव आदि) वह नाम कहलाता है उसकी प्रतिमा स्थापना कहलाती है जो गुण पर्याय सहित हो उसे द्रव्य कहते हैं और गुण तथा पर्यायोंको भाव कहते हैं।।१००।।

आदौ मध्येऽवसाने यद्वाङ्मयं व्याप्य तिष्ठति।
हृदि ज्योतिष्मदुद्गच्छन्नामध्येयं तदर्हतां।।१०१।।

हृदयमें जो ज्योतिःस्परुप अरहंत देवोंका प्रकाशमान नाम है जो कि आदि मध्य और अन्तमें व्याप्त होकर वाङ्मयरुप (अक्षर

रुप) रहता है उसको नाम ध्यान कहते हैं।।१०१।।

हृत्पंकजे चतुःपत्रे ज्योतिष्मंति प्रदक्षिणं।
असिआउसाक्षराणि ध्येयानि परमेष्ठिनां।।१०२।।

उसकी विधि इस प्रकार है-ज्योतिःस्वरुप और चार पत्रोंवाला जो हृदय कमल है उसमे परमेष्ठियोंके वाचक अ सि आ उ सा अक्षरको प्रदक्षिणा रुपसे ध्यान करना चाहिये।।१०२।।

ध्यायेदइउणओ च तद्वन्मंत्रानुदर्चिषः।
मत्यादिज्ञाननामानि मत्यादिज्ञानांसद्धये।।१०३।।

इसी प्रकार मति आदि पांचों ज्ञानोंको सिद्ध करनेके लिये जिनसे ऊपरकी ओर अग्नि निकल रही है ऐसे मति श्रुत आदि पांचों ज्ञानोंके वाचक अ इ उ ए ओ इन मंत्रों का भी ध्यान करना चाहिये ।।१०३।।

सप्ताक्षरं महामंत्रं मुखरंध्रेषु सप्तसु।
गुरुपदेशतो ध्यायेदिच्छन् दूरश्रवादिकं।।१०४।।

इसी तरह गुरुके उपदेशके अनुसार सुनाई देने आदि दोषोंको दूर रखनेकी इच्छा करता हुआ सातों मुख रन्ध्रों में [मुखते सातों छिद्रोंमें] णमो अरहंताणं इन सात अक्षरोंके महामन्त्रका ध्यान करे ।।१०४।।

हृदयेऽष्टदलं पद्मं वर्गैः पूरितमष्टभिः।
दलेषु कर्णिकायां च नाम्नाऽधिष्ठितमर्हतां।।१०५।।

अथवा हृदयमें आठ दलका कमल बनावे उसके आठों दल

आठों वर्गोंसे पूर्ण करे तथा कर्णिकामें अरहंत का नाम लिखकर उसका ध्यान करे।।१०५।।

गणभृद्वलयोपेतं त्रिःपरीतं च मायया।
क्षोणीमंडलमध्यस्थं ध्यायेदभ्यर्च्चयेच्च तत्।।१०६।।

अथवा जिसके मध्य भागमें क्षोणीमंडल विराजमान है और जो मायसे तीन वार घिरा हुआ है ऐसे गणमृत् बलय यन्त्र का ध्यान करे तथा उसकी पूजा करे।।१०६।।

अकारादिहकारान्ताः मंत्राः परमशक्तयः।
स्वमंडलगता ध्येया लोकद्वयफलप्रदाः।।१०७।।

अथवा दोनों लोकों में फल देनेवाले और परम शक्तिमान ऐसे अपने मण्डलमें प्राप्त हुए अकारसे हकार तक अक्षरात्मक मंत्रों का ध्यान करे।।१०७।।

इत्यादिन्मंत्रिणो मंत्रानर्हन्मंत्रपुरस्सरान्।
ध्यायन्ति यदिह स्पष्टं नामध्येयमवैहि तत्।।१०८।।

इस प्रकार मंत्रों का ध्यान करने वाले योगी पुरुष अरहन्त वाचक मन्त्रों को आदि लेकर ऊपर लिखे हुए मन्त्रोंका ध्यान करते हैं उसे नाम ध्यान कहते हैं।।१०८।।

जिनेंद्रप्रतिबिंबानि कृत्रिमाण्यकृतानि च।
यथोक्तान्यागमे तानि तथा ध्यायेदशंकितं।।१०९।।

अथवा सब तरह के सन्देहोंको दूर कर शास्त्रों में कही हुई कृत्रिम और अकृत्रिम ऐसी भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाओं का ध्यान

करना चाहिये यह स्थापना ध्यान कहलाता है।।१०९।।

यथैकमेकदा द्रव्यमुत्पित्सु स्थास्नु नश्वरं।
तथैव सर्व्वदा सर्वभिति तत्त्वं विचिंतयेत्।।११०।।

कोई द्रव्य किसी समय उत्पन्न होनेवाला हो, नष्ट होनेवाला हो और ध्रुवरुप वा स्थिर रहने वाला हो उसको सदा उसी रुपसे चिंतवन करना द्रव्यध्यान कहलाता है।।११०।।

चेतनोऽचेतनो वार्थो यो यथैव व्यवस्थितः।
तथैव तस्य यो भावो याथात्म्यं तत्त्वमुच्यते।।१११।।

चेतन वा अचेतन रुप जो पदार्थ जिस तरह व्यवस्थित है तथा उसका जो भाव है उसको उसी प्रकार कहना यथार्थ तत्त्व कहलाता है उसके ध्यानको भाव ध्यान कहते हैं।।१११।।

अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणं।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले।।११२।।

यह द्रव्य अनादि और अनिधन है अर्थात् न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी नष्ट होगा जिस प्रकार पानी में पानी की लहरें उत्पन्न होती रहती हैं और उसीमें नष्ट होती रहती हैं उसी प्रकार इस द्रव्य में भी इसकी पर्यायें प्रत्येक क्षण में उत्पन्न होती रहती हैं और प्रत्येक क्षण में नष्ट होती रहती हैं।।११२।।

यद्विवृत्तं यथापूर्वं यच्च पश्चाद्विवर्त्स्यति।
विवर्तते यदत्राद्य तदेवेदभिदं च तत्।।११३।।

एक द्रव्य की जो पर्यायें पहिले विकसित हो चुकी हैं आगे

विकसित होने वाली हैं तथा आज जो विकसित हो रही हैं वे सब ही द्रव्यकी पर्यायें कहलाती हैं और उनके समूह को ही द्रव्य कहते हैं।।११३।।

सहवृत्ता गुणास्तत्र पर्यायाः क्रमवर्त्तिनः।
स्यादेतदात्मकं द्रव्यमेते च स्युस्तदात्मकाः।।११४।।

जो सदा साथ रहें उन्हें गुण कहते हैं और जो अनुक्रम से हों उन्हें पर्याय कहते हैं इन गुण और पर्याय रुप ही द्रव्य कहलाता है तथा गुण पर्याय भी द्रव्य रुप ही कहलाते हैं।।११४।।

एवंविधमिदं वस्तु स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकं।
प्रतिक्षणमनाद्यंतं सर्व्वं ध्येयं यथास्थितं।।११५।।

इस प्रकार ये सब द्रव्य प्रतिक्षण उत्पाद व्यय और ध्रौव्य रुप हैं तथा अनादि और अनिधन हैं इन सबका जो यथार्थ स्वरुप है वह सब ध्यान करने योग्य है।।११५।।

अर्थव्यंजनपर्याया मूर्त्तामूर्त्ता गुणाश्च ये।
यत्र द्रव्ये यथावस्थास्तांश्च तत्र तथा स्मरेत्।।११६।।

इसके सिवाय जो अर्थ पर्याय है व्यंजन पर्याय है मूर्त अमूर्तरुप गुण हैं तथा वे पर्याय और गुण जिस द्रव्य में जिस रीतिसे मौजूद हैं उन सबको उसी प्रकार चिंतवन करना चाहिये।।११६।।

पुरुषः पुद्गलः कालो धर्माधर्मौ तथांबरं।
षड्विधं द्रव्यमाम्नातं तत्र ध्येयतमः पुमान्।।११७।।

जीव, पुद्गल, काल, धर्म, अधर्म और आकाश ये छह द्रव्य

हैं इनमें सबसे उत्तम ध्यान करने योग्य जीव द्रव्य ही है।११७।

सति हि ज्ञातरि ज्ञेयं ध्येयतां प्रतिपद्यते।
ततो ज्ञानस्वरुपोऽयमात्मा ध्येयतमः स्मृतः।।११८।।

इसका भी कारण यह है कि ज्ञाताके होते हुए ही कोई भी ज्ञेय पदार्थ ध्यान करने योग्य हो सकता है इसी लिये ज्ञान स्वरुप यह आत्मा ही सबसे उत्तम ध्यान करने योग्य माना गया है।११८।

तत्रापि तत्त्वतः पंच ध्यातव्याः परमेष्ठिनः।
चत्वारः सकलास्तेषु सिद्धः स्वामीति निष्कलः।।११९।।

उसमें भी वास्तविक रीति से पांच परमेष्ठी ही ध्यान करने योग्य हैं उन परमेष्ठियों में भी चार तो (अरहन्त आचार्य उपाध्याय साधु) शरीर सहित हैं और सबके स्वामी सिद्ध शरीररहित हैं।११९।

अनंतदर्शनज्ञानसम्यक्त्वादिगुणात्मकं।
स्वोपात्तानंतरत्यक्तशरीराकारधारिणः।।१२०।।

साकारं च निराकारममूर्त्त मजरामरं।
जिनबिंबमिव स्वच्छस्फटिकप्रतिबिंबितं।।१२१।।

लोकाग्रशिखरारुढमुदूढसुखसंपदं।
सिद्धात्मानं निराबाधं ध्यायेन्नद्धूतकल्मषं।।१२२।।

जो अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान और अनन्त सम्यक्त्व आदि गुण स्वरुप हैं कर्मोदय से प्राप्त हुए और कर्मोके नष्ट करने से छोडे हुए शरीर के आकार को धारण करने वाले हैं इसलिये जो साकार हैं, तथा साकार होकर भी निराकार हैं, अमूर्त हैं जरामरण से

रहित हैं जिनबिंबके समान स्वच्छ स्फटिककी प्रतिमाके समान हैं जो लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं सुख रुपी संपदा से भरपूर हैं जो सब तरह की बाधाओं से रहित और समस्त पापों को नाश करने वाले हैं ऐसे सिद्धोंका ध्यान करना चाहिये।।१२०-२२।।

तथाद्यमाप्तमाप्तानां देवानामधिदैवतं।
प्रक्षीणघातिकर्माणं प्राप्तानंतचतुष्टयं।।१२३।।

दूरमुत्सृज्य भूभागं नभस्तलमधिष्ठितं।
परमौदारिकस्वांगप्रभाभर्त्सितभास्करं।।१२४।।

चतुस्त्रिंशन्महाश्चर्यैः प्रातिहार्यैश्च भूषितं।
मुनितिर्यङ्नरस्वर्गिसभाभिः सन्निषेवितं।।१२५।।

जन्माभिषेकप्रमुखप्राप्तपूजातिशायिनं।
केवलज्ञाननिर्णीतविश्वतत्त्वोपदेशिनं।।१२६।।

प्रभास्वल्लक्षणाकीर्णसम्पूर्णोदग्रविग्रहं।
आकाशस्फटिकांतस्थज्वलज्ज्वालानलोज्वलं ?।।१२७।।

तेजसामुत्तमं तेजो ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं।
परमात्मानमर्हंतं ध्यायेन्निःश्रेयसाप्तये।।१२८।।

इसी तरह पंच परमेष्ठियों में जो सबसे प्रथम देवोंके भी देव वा देवाधिदेव हैं जिन्होंने घातिया कर्मोंको नष्ट कर दिया है जिन्हें अनन्त चतुष्टय प्राप्त होगया है जो पृथ्वी तलको दूरसे ही परित्याग कर लोकाकाश के ऊपर विराजमान हैं, परमौदारिक रुप अपने शरीर की प्रभासे जिन्होंने सूर्यको भी तिरस्कृत कर दिया है जो चौंतीस

अतिशय और आठों प्रातिहार्योंसे सुशोभित हैं, मुनि तिर्यंच मनुष्य और देवों के समूह सदा जिनकी सेवा करते रहते हैं जन्माभिषेक आदि अनेक पूजा के अतिशय जिनको प्राप्त हुए हैं, केवल ज्ञान के द्वारा जिन्होंने संसार के समस्त तत्त्वों के उपदेश देने वालोंका निर्णय किया है, समस्त लक्षणों से भरा हुआ जिनका परमोत्तम सम्पूर्ण शरीर प्रकाशमान है, आकाश स्फटिक के भीतर जलती हुई ज्वालारुप अग्निके समान जो उज्जवल हैं, जिनका तेज तेजस्वियों में भी उत्तम है जिनकी ज्योति ज्योतिवालों में भी सबसे उत्तम है और जिनका आत्मा परमात्मा अवस्था को प्राप्त हो गया है ऐसे अरहन्त देवका ध्यान केवल मोक्ष प्राप्त कर ने के लिये करना चाहिये।।१२३-१२८।।

वीतरागोऽप्ययं देवो ध्यायमानो मुमुक्षुभिः।
स्वर्गापवर्गफलदः शक्तिस्तस्य हि तादृशी।।१२९।।

मोक्षकी इच्छा करनेवालोंके द्वारा ध्यान किये गये अरंहत देव वीतराग हैं तोभी अवश्य ही स्वर्ग और मोक्ष रुप फलको देनेवाले हैं क्योंकि उनमें शक्ति ही इस तरह की है।।१२९।।

सम्यग्ज्ञानादिसंपन्नाः प्राप्तसप्तमहर्द्धयः।
तथोक्तलक्षणा ध्येयाः सूर्युपाध्यायसाधवः।।१३०।।

इसी तरह जो सम्यग्ज्ञानादि सहित हैं जिन्हें सातों महर्धियां प्राप्त हुई हैं और शास्त्रोंमें कहे हुए गुण और लक्षणोंसे जो विराजमान हैं ऐसे आचार्य उपाध्याय और साधुका ध्यान भी करना चाहिये ।।१३०।।

एवं नामादिभेदेन ध्येयमुक्तं चतुर्विधं।
अथवा द्रव्यभावाभ्यां द्विधैव तदवस्थितं।।१३१।।

इस प्रकार नाम स्थापना द्रव्य भावके भेदसे ध्यान करने योग्य पदार्थ चार प्रकारका बतलाया अथवा द्रव्य और भावके भेदसे यह दो प्रकारका भी माना जाता है।।१३१।।

द्रव्यध्येयं बहिर्वस्तु चेतनाचेतनात्मकं।
भावध्येयं पुनर्ध्येयसन्निभध्यानपर्ययः।।१३२।।

चेतनचेतनात्मक जो बाह्य पदार्थ हैं वे सब द्रव्य ध्येय (द्रव्य ध्यान करने योग्य) गिने जाते हैं और ध्येय के समान ही जो ध्यानका पर्याय है अर्थात् जिसमें ध्येय और ध्यानका कोई अंतर नहीं है वह भाव ध्येय माना जाता है।।१३२।।

ध्याने हि बिभ्रते स्थैर्यं ध्येयरुपं परिस्फुटं।
आलेखितमिवाभाति ध्येयस्यासन्निधावपि।।१३३।।

यदि ध्येय पदार्थ समीप न हो तो भी ध्यानमें ध्येय रुप पदार्थ व्यक्त रुपसे स्थिर प्रकाशमान होता है और उस समय वह ध्येय रुप पदार्थ चित्रितके समान निश्चल जान पडता है।।१३३।।

धातुपिंडे स्थितश्चैवं ध्येयोऽर्थो ध्यायते यतः।
ध्येयपिंडस्थमित्याहुरत एव च केवलं।।१३४।।

इस ध्यानमें धातुपिंडमें ठहरा हुआ जो ध्येय पदार्थ है उसका ध्यान किया जाता है इसीलिये इस ध्यानको केवल ध्येय पिंडस्थ कहते हैं।।१३४।।

यदा ध्यानबलाद्ध्याता शून्यीकृत्य स्वविग्रहं।
ध्येयस्वरुपाविष्टत्वात्तादृक् संपद्यते स्वयं।।१३५।।

तदा तथाविधध्यानसंवित्तिध्वस्तकल्पनः।
स एव परमात्मा स्याद्वैनतेयश्च मन्मथः।।१३६।।

जिस समय ध्यान करने वाला ध्यानके बलसे अपने शरीरको न कुछ समझ कर ध्येयके स्वरुपमें प्रविष्ट हो जाता है अर्थात् स्वयंमें मिल जाता है और ध्येय रुप हो जाता है उस समय वह उस ध्यान रुपी ज्ञानसे सब कल्पनाओंको नष्ट कर देता है अर्थात् वह निर्विकल्प हो जाता है इसलिये वही ध्याता परमात्मा कहलाता है वही वैनतेय कहा जाता है और वही मन्मथके नामसे पुकारा जाता है।।१३५-१३६।।

सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं स्मृतं।
एतदेव समाधिः स्याल्लोकद्वयफलप्रदः।।१३७।।

उस ध्याताका ध्येय रुप हो जाना ही समरसीभाव कहलाता है उसीको एकीकरण कहते हैं और वही दोनों लोकोंमें उत्तम फल देनेवाली समाधि कहलाती है।।१३७।।

किमत्र बहुनोक्तेन ज्ञात्वा श्रद्धाय तत्त्वतः।
ध्येयं समस्तमप्येतन्माध्यस्थ्यं तत्र बिभ्रता।।१३८।।

बहुत कहनेसे क्या ? ध्यान धारण करने वालेको यह बात यथार्थ रीतिसे जान लेना चाहिये और श्रद्धान करलेना चाहिये कि संसारमें जो ध्येय हैं उन सब में माध्यस्थ्य समताभाव धारण करना चाहिये।।१३८।।

माध्यस्थ्यं समतोपेक्षा वैराग्यं साम्यमस्पृहा।
वैतृष्णयं परमा शांतिरित्येकोऽर्थोऽभिधीयते।।१३९।।

माध्यस्थ, समता, उपेक्षा, वैराग्य, साम्य, निस्पृहता वितृष्णा और परमशांति ये, सब एकार्थवाचक हैं अर्थात् इन सबका एकही अर्थ है।।१३९।।

संक्षेपेण यदत्रोक्तं विस्तारात्परमागमे।
तत्सर्वं ध्यानमेव स्याद्ध्यातेषु परमेष्ठिषु।।१४०।।

यहां पर जो ध्यान स्वरुप संक्षेपसे कहा है वह परमागममें बडे विस्तारसे कहा गया है केवल परमेष्ठियों का ध्यान करनेसे वह सब ध्यान हो जाता है।।१४०।।

व्यवहारनयादेवं ध्यानमुक्तं पराश्रयं।
निश्चयादधुना स्वात्मालंबनं तन्निरुप्यते।।१४१।।

इस प्रकार व्यवहार नयसे होनेवाले परावलंबन ध्यानका स्वरुप कहा। अब आगे निश्चय नयसे होने वाले स्वात्मावलंबन ध्यानका स्वरुप कहते हैं।।१४१।।

ब्रुवता ध्यानशब्दार्थं यद्रहस्यमवादिशत्।
तथापि स्पष्टमाख्यातुं पुनरप्यभिधीयते।।१४२।।

ध्यान शब्दका अर्थ कहते समय ही जो कुछ उसका रहस्य था वह सब कह दिया गया था तथापि उसे स्पष्ट प्रगट करनेके लिये फिरसे कहते हैं।।१४२।।

दिधासुः स्वं परं ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थितिं।
विहायान्यदनर्थित्वात् स्वमेवावैतु पश्यतु।।१४३।।

ध्यानकी इच्छा करनेवालेको चाहिये कि वह पहले अपने आत्मा तथा आत्माके सिवाय समस्त पदार्थोंका स्वरुप जाने और उनकी जैसी अवस्था है वैसाही उनका श्रद्धान करे। तदनंतर अनर्थक होनेसे आत्माके सिवाय अन्य सबका परित्याग करदे और केवल अपने ही आत्मा को जाने तथा केवल उसे ही देखे।।१४३।।

पूर्वं श्रुतेन संस्कारं स्वात्मन्यारोपयेत्ततः।
तत्रैकाग्र्यं समासाद्य न किंचिदपि चिंतयेत्।।१४४।।

उस स्वात्मावलम्बन ध्यान करने वालेको चाहिये वह सबसे पहिले अपने आत्मामें श्रुतज्ञानका संस्कार करे और फिर अपने आत्मामें एकाग्र होकर अन्य किसी पदार्थ का चिंतवन न करे।।१४४।।

यस्तु नालंबते श्रौतीं भावनां कल्पनाभयात्।
सोऽवश्य मुह्यति स्वस्मिन्वहिश्चिंतां बिभर्ति च।।१४५।।

जो योगी कल्पानके डरसे [निर्विकल्प ध्यान न हो सकेगा इस डरसे] श्रुत ज्ञानकी भावनाका आलंबन नहीं करता वह अवश्य ही अपने आत्मामें मोहित होजाता है तथा अनेक बाह्य चिंताओंको भी वह धारण करता है।।१४५।।

तस्मान्मोहप्रहाणाय वहिश्चिंतानिवृत्तये।
स्वात्मानं भावयेत्पूर्वमैकाग्र्यस्य च सिद्धये।।१४६।।

इसलिये मोहको नाश करनेके लिये तथा बाह्य (आत्माके सिवाय

अन्य पदार्थोंकी) चिंताओंको दूर करनेके लिये और एकाग्रताकी सिद्धि करनेके लिये सबसे पहिले अपने आत्मा का विचार करना चाहिये ।।१४६।।

तथा हि चेतनोऽसंख्यप्रदेशो मूर्तिवर्जितः।
शुद्धात्मा सिद्धरुपोऽस्मि ज्ञानदर्शनलक्षणः।।१४७।।

उसीको दिखलाते हैं-मैं चैतन्य हूँ, असंख्यात प्रदेशोंवाला हूँ और मूर्तिरहित हूं, मेरा आत्मा शुद्ध है, सिद्ध स्वरुप है और ज्ञानमय है।।१४७।।

नान्योऽस्मि नाहमस्त्यन्यो नान्यस्याहं न मे परः।
अन्यस्त्वन्योऽहमेवाहमन्योन्यस्याहमेव मे।।१४८।।

मैं अन्य स्वरुप (देह स्वरुप अथवा आत्मेतर स्वरुप) नहीं हूं और न अन्य ही मम स्वरुप है, न मैं अन्यका हूं न मेरा अन्य है, अन्य २ ही है और मैं, मैं ही हूं अन्योन्य रुप से मैं अपना ही (आत्मा का) हूं (दूसरे का नहीं)।।१४८।।

अन्यच्छरीरमन्योऽहं चिदहं तदचेतनं।
अनेकमेतदेकोऽहं क्षयीदमहमक्षयः।।१४९।।

शरीर अन्य है मैं अन्य हूं, मैं चैतन्य स्वरुप हूं शरीर जड है शरीर अनेक रुप है मैं अकेला हूँ, शरीर नाश होने वाला है और मैं कभी नाश होने वाला नहीं हूँ।।१४९।।

अचेतनं भवे नाहं नाहमप्यस्त्यचेतनं।
ज्ञानात्माहं न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्।।१५०।।

यद्यपि संसारमें परिभ्रमण करनेसे मैं अचेतन सरीखा दिखता हूं परन्तु वास्तवमें मैं अचेतन नहीं हूं बल्कि ज्ञान स्वरुप हूँ इस संसार मैं न तो मेरा कोई है और न मैं अन्य किसी का हूँ ।।१५०।।

योऽत्र स्वस्वामिसम्बन्धो ममाभूद्वपुषा सह।
यश्चैकत्वभ्रमस्सोऽपि परस्मान्न स्वरुपतः।।१५१।।

इस संसारमें शरीर के साथ जो कुछ मेरा स्वस्वामी सम्बन्ध है (शरीर मेरा है और मैं उसका स्वामी हूँ) और दोनों के (शरीर और आत्माके) एक होनेका कारण है वह सब दूसरे के सम्बन्धसे (कर्मोंके सम्बन्धसे है वास्तविक रीतिसे नहीं है।।१५१।।

जीवादिद्रव्ययाथात्म्यज्ञातात्मकमिहात्मना।
पश्यन्नात्मन्यथात्मानमुदासोनोऽस्मि वस्तुषु।।१५२।।

यह मेरा आत्मा अपनेही आत्मा के द्वारा अपनेही आत्मा में जीवादि सब द्रव्योंके यथार्थ स्वरुपको जानने वाला है इस प्रकारके अपने आत्माको देखकर मुझे स्वयं अन्य समस्त पदार्थोंसे उदासीन रहना पडता है है।।१५२।।

सद्द्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञाता द्रष्टा सदाप्युदासीनः।
स्वोपात्तदेहमात्रस्ततः पृथग्गगनवदमूर्त्तः।।१५३।।

मैं सद् द्रव्य हूँ अर्थात् सब पदार्थोंमें उत्तम पदार्थ (जीव) रुप हूं मैं चैतन्य रुप हूँ और फिर भी सदा उदासीन रहने वाला हूं, मेरा आत्मा ग्रहण किये गये शरीर प्रमाण है तोभी में शरीरसे सर्वथा भिन्न हूं और आकाश के समान अमूर्त हूँ।।१५३।।

सन्नेवाहं सदाप्यस्मि स्वरुपादिचतुष्टयात्।
असन्नेवास्मि चात्यंतं पररुपाद्यपेक्षया।।१५४।।

स्वरुपादि चतुष्टयसे (स्व-द्रव्य क्षेत्र काल भावसे) मैं सदा अस्तित्व रुप हूँ और परचतुष्टयसे (पर द्रव्य क्षेत्र काल भावसे) मैं सदा नास्तित्व रुप हूं।।१५४।।

यन्न चेतयते किंचिन्नाचेतयत किंचन।
यच्चेतयिष्यते नैव तच्छरीरादि नास्म्यहं।।१५५।।

जो शरीर आदि जड पदार्थ न तो कभी चैतन्य स्वरुप हैं न कभी पहिले चैतन्य स्वरुप थे और न कभी आगे चैतन्य स्वरुप होंगे ऐसे शरीरादि जडस्वरुप मैं नही हूं।।१५५।।

यदचेतत्तथा पूर्वं चेतिष्यति यदन्यथा।
चेतनीयं यदत्राद्य तच्चिद्द्रव्यं समस्म्यहम्।।१५६।।

जो पहिले भी इसी रुपसे चैतन्य स्वरुप था आगे भी रुपान्तरसे चैतन्य स्वरुप रहेगा और आज भी जो चैतन्य स्वरुप है ऐसे चैतन्यस्वरुप चिद्द्रव्यमय मैं हूं।।१५६।।

स्वयमिष्टं न च द्विष्टं किन्तूपेक्ष्यमिदं जगत्।
नोऽहमेष्टा न च द्वेष्टा किन्तु स्वयमुपेक्षिता।।१५७।।

यह संसार स्वयं न तो इष्ट (भला करने वाला) है और न द्वेष्टा (बुरा करने वाला वा अनिष्ट) है किंतु उपेक्ष्य अर्थात् इष्ट अनिष्टसे रहित उदासीन रुप है इसलिये मै भी न तो किसीसे राग करता हूं और न किसीसे द्वेष करता हूँ किंतु मैं स्वयं उपेक्षा

करनेवाला उदासीन रुप हूं।।१५७।।

मत्तः कायादयो भिन्नास्तेभ्योऽहमपि तत्त्वतः।
नाऽहमेषों किमप्यस्मि ममाप्येते न किंचन।।१५८।।

शरीरादिक मुझसे बिल्कुल भिन्न हैं और वास्तविक रीतिसे मैं भी उनसे बिल्कुल भिन्न हूं मैं इनका कोई नहीं हूं और ये मेरे कोई नहीं हैं।।१५८।।

एवं सम्यग्विनिश्चित्य स्वात्मानं भिन्नमन्यतः।
विधाय तन्मयं भावं न किंचिदपि चिंतये।।१५९।।

इस प्रकार अच्छीतरह निश्चयकर और अन्य सब पदार्थोंसे अपने आत्माको भिन्न मानकर मैं अपने भावों को आत्ममय ही बना लेता हूं आत्माके सिवाय मैं अन्य किसी का चिंतवन नहीं करता।१५९।

चिन्ताभावो न जैनानां तुच्छो मिथ्यादृशामिव।
दृग्बोधसाम्यरुपस्य यत्स्वसंवेदनं हि सः।।१६०।।

चिंताका अभाव होना (आत्मामें लीन होनेसे अन्य चिंताओंका अभाव होना, एकाग्र होना) जैनियोंमें मिथ्यादृष्टियोंके समान तुच्छ नहीं माना गया है क्यों कि वह चिंताका अभाव [आत्मामें तल्लीन होना] सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और समतारूप अपने आत्माका स्वसंवेदनरुप पडता है।।१६०।।

वेद्यत्वं वेदकत्वं च यत्स्वस्य स्वेन योगिनः।
तत्स्वसंवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवं दृशं।।१६१।।

योगियोंको जो अपने आप अपने आत्मा का वेद्यत्व (जानने योग्य)

और वेदकत्व (ज्ञातापना) जान पडता है अर्थात् आत्मा ही ज्ञाता है और आत्मा ही ज्ञेय है ऐसा जो ज्ञान होता है उसको स्वसंवेदन कहते हैं अथवा सम्यग्दर्शनरुप जो आत्मा का अनुभव है उसको भी स्वसंवेदन कहते हैं।।१६१।।

स्वपरज्ञप्तिरुपत्वान्न तस्य कारणान्तरं।
ततश्चिंतां परित्यज्य स्वसंवित्त्यैव वेद्यतां।।१६२।।

वह स्वसंवेदन स्वपरज्ञप्तिरुप है अर्थात् आत्मा आत्मेतरपदार्थोंके ज्ञानस्वरुप है इसलिये उसकेलिये अन्य किसी कारण की आवश्यकता नहीं है अर्थात् वह स्वसंवेदन स्वयं प्राप्त हो जाता है इसलिये सब चिंताओं को छोडकर स्वसंवेदनके द्वारा ही आत्माका अनुभव करना चाहिये।।१६२।।

दृग्बोधसाम्यरुपत्वाज्जानन् पश्यन्नुदासिता।
चित्सामान्यविशेषात्मा स्वात्मनैवानुभूयतां।।१६३।।

यह आत्मा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और समता स्वरुप है इसलिये उसमें सब पदार्थोंको देखते और जानते हुए भी जो उदासीनपना है वह सामान्य और विशेष चैतन्यस्वरुप है, आत्मा को उसे अपने ही आत्मा के द्वारा अनुभव करना चाहिये।।१६३।।

कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यो भावेभ्यो भिन्नमन्वहं।
ज्ञस्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना।।१६४।।

यह आत्मा कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए सब तरहके द्वेष आदि भावोंसे भिन्न है तथा ज्ञस्वभाव (ज्ञानस्वभाववाला) औरक उदासीन है ऐसे अपने आत्मा को अपने ही आत्माके द्वारा देखना चाहिये।१६४।

यन्मिथ्याभिनिवेशेन मिथ्याज्ञानेन चोज्झितं।
तन्माध्यस्थ्यं निजं रुपं स्वस्मिन्संवेद्यतां स्वयं।।१६५।।

जो अपने आत्मा का स्वरुप मिथ्याश्रद्धान (मिथ्यादर्शन) और मिथ्याज्ञानसे रहित है उसे माध्यस्थ्य कहते हैं वह आत्माका माध्यस्थ्यस्वभाव अपने ही आत्मामें अपने आप संवेदन करना चाहिये अर्थात् अपने आप उसका अनुभव करना चाहिये।।१६५।।

न हीन्द्रियधिया दृश्यं रुपादिरहितत्वतः।
वितर्कास्तन्न पश्यंतिते ह्यविस्पष्टतर्कणाः।।१६६।।

``यह उदासीन और मध्यस्थरुप आत्मा रुपादि गुणों से रहित है इसलिये वह इंद्रियों को (जिन्हें इंद्रियोंसे ज्ञान उत्पन्न होता है ऐसे छद्मस्थोंको) कभी दिखाई नहीं पड सकता'' इसप्रकारके वितर्क करनेवालेको वह वास्तवमें दिखाई नहीं पडता है क्योंकि उनका वह वितर्क स्पष्ट वा ठीक नहीं है।।१६६।।

उभयस्मिन्निरुद्धे तु स्याद्विस्पष्टमतीद्रियं।
स्वसंवेद्यं हि तद्रुपं स्वसंवित्यैव दृश्यतां।।१६७।।

जिस समय यह आत्मा माध्यस्थ और उदासीनता से भरपूर रहता है उस समय वह अतींद्रिय होकर भी स्पष्ट प्रत्यक्ष होता है इसलिये उस समय उसका स्वरुप स्वसंवेद्य (अपने आप जानने योग्य) होता है अतएव स्वसंवित्ति से ही उसे देखना चाहिये।१६७।

वपुषोऽप्रतिभासेऽपि स्वातंत्र्येण चकासते।
चेतना ज्ञानरुपेयं स्वयं दृश्यत एव हि।।१६८।।

यद्यपि उससमय शरीरका प्रतिभास वा ज्ञान नहीं होता है तथापि ज्ञानस्वरुप यह चेतना स्वतंत्ररुप से प्रकाशित होती ही है इसलिये वह अपने आप दिखाई पडती है।।१६८।।

समाधिस्थेन यद्यात्मा बोधात्मा नानुभूयते।
तदा न तस्य तद्ध्यानं मूर्छावान्मोह एव सः।।१६९।।

यदि ध्यानमें लगा हुआ योगी अपने ज्ञानस्वरुप आत्माका अनुभव नही कर सकता तो समझना चाहीये कि उसका वह ध्यान वास्तविक ध्यान नहीं है वास्तवमें योगी मूर्छासहित (परिग्रहों में आसक्त) मोही ही है।।१६९।।

तदेवानुभवंश्चायमेकाग्यं परमृच्छति।
तथात्माधीनमानंदमेति वाचामगोचरं।।१७०।।

उस ज्ञानस्वरुप आत्माका अनुभव करता हुआ यह योगी सबसे उत्तम एकाग्रताको प्राप्त होता है और उस एकाग्रतामें आत्माके आधीन रहनेवाले उस परमानन्दको प्राप्त होता है जो कि वचनसे कहा भी नहीं जा सकता।।१७०।।

यथा निर्वातदेशस्थः प्रदीपो न प्रकंपते।
तथा स्वरुपनिष्ठोऽयं योगी नैकाग्र्यमुज्झति।।१७१।।

जिसप्रकार वायुरहित प्रदेशमें रक्खा हुआ दीपक कम्पायमान नहीं होता (सदा निश्चल ही रहता है) उसीप्रकार अपने आत्माके स्वरुपमें तल्लीन हुआ योगी एकाग्रताको कभी नहीं छोडता।१७१।

तदा च परमैकग्र्याद्बहिरर्थेषु सत्स्वपि।
अन्यन्न किंचनाभाति स्वमेवात्मनि पश्यतः।।१७२।।

उससमय परम एकाग्रता धारण करनेसे वह योगी अपने आत्मामें केवल अपने आत्माको ही देखता है और इसीलिये बाह्य पदार्थोंके रहते हुए भी उसे आत्माके सिवाय अन्य कुछ दिखाई नहीं पडता ।।१७२।।

अत एवान्यशून्योऽपि नात्मा शून्यः स्वरुपतः।
शून्याशून्यस्वभावोऽयमात्मनैवोपलभ्यते।।१७३।।

इसलिये अन्य पदार्थोंसे शून्य होकर भी यह आत्मा अपने स्वरुपसे शून्य नहीं हो सकता अतएव शून्या शून्यस्वभाववाला यह आत्मा अपने ही आत्मा के द्वारा प्राप्त होता है।।१७३।।

ततश्च यज्जगुर्मुक्त्यै नैरात्म्याद्वैतदर्शनं।
तदेतदेव यत्सम्यगन्यापोढात्मदर्शनं।।१७४।।

इसलिये जो बहुतसे लोग नैरात्म्याद्वैतदर्शनको ही मुक्ति का उपाय बतलाते हैं वह अन्य समस्त पदार्थोंका अभावरुप जो आत्मदर्शन है वही नैरात्म्याद्वैतदर्शन कहलाता है क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अन्य सब पदार्थोंका अभावरुप होता है स्वात्मा भी अन्य सब पदार्थोंका अभावरुप है इसलिये स्वात्मा ही नैरात्म्याद्वैतदर्शन (अन्यात्मा के अभावरुप अर्थात् केवल स्वात्माद्वैतरुपदर्शन) कहलाता है।।१७४।।

परस्परपरावृत्ताः सर्वे भावाः कथंचन।
नैरात्म्यं जगतो यद्वन्नैर्जगत्यं तथात्मनः।।१७५।।

प्रकारांतरसे संसारके समस्त पदार्थ परस्पर परावृत्त रुप हैं अर्थात् संसारका प्रत्येक पदार्थ अपनेसे भिन्न अन्य समस्त पदार्थोंका अभाव रुप है इसलिये संसार नैरात्म्य है तथा संसार और आत्मा भी भिन्न

२ है इसलिये आत्मा नैर्जगत्य है-संसारसे भिन्न है।।१७५।।

अन्यात्माभावो नैरात्म्यं स्वात्मसत्तात्मकश्च सः।
स्वात्मदर्शनमेवातः सम्यग्नैरात्म्यदर्शन।।१७६।।

अन्य आत्माओंका-पदार्थोंका अभाव ही नैरात्म्य कहलाता है और वह स्वात्मसत्तात्मक ही (अपने आत्माकी सत्तारुप) पडता है। इसलिये सम्यग्नैरात्म्यदर्शन स्वात्मदर्शन ही पडता है। भावार्थ-अपने आत्मा का दर्शन ही उत्तम नैरात्म्यदर्शन है।।१७६।।

आत्मानमन्यसंपृक्तं पश्यन् द्वैतं प्रपश्यति।
पश्यन् विभक्तमन्येभ्यः पश्यत्यात्मानमद्वयं।।१७७।।

अन्य कर्मोंके संबंधसे संबंधित आत्माको देखता हुआ यह जीव द्वैतपना देखता है परन्तु जब यहीं जीव इस आत्माको कर्मोंके संबंधसे रहित वा भिन्न देखता है तो यही आत्मा उसे अद्वैत दिखाई देता है।।१७७।।

पश्यन्नात्मानमैकाग्र्यात्क्षपयत्यर्जितान्मलान्।
निरस्ताहंममीभावः संवृणोत्यप्यनागतान्।।१७८।।

अहंकार और ममकार आदि भावोंको नष्टकर जिस समय यह आत्मा एकाग्रता से आत्माको देखता है उससमय वह अनेक इकट्ठे किये हुए पापोंको नाश करता हैं तथा आगामी आनेवाले कर्मोंका संवर भी वह करता हैं।।१७८।।

यथा यथा समाध्याता लप्स्यते स्वात्मनि स्थितिं।
समाधिप्रत्ययाश्चास्य स्फुटिष्यन्ति तथा तथा।।१७९।।

सम्यक् ध्यान करनेवाला यह आत्मा ज्यों ज्यों अपने आत्मामें स्थिर होता जाता है त्यों त्यों उसकी समाधि वा निश्चल ध्यानका कारण भी स्पष्ट प्रगट होता जाता है।।१७९।।

एतद् द्वयोरपि ध्येयं ध्यानयोर्धर्म्यशुक्लयोः।
विशुद्धिस्वामिभेदात्तु तयोर्भेदोऽवधार्यतां।।१८०।।

धर्म्य और शुक्ल इन दोनों ध्यानों में यह एक स्वात्मदर्शन ही ध्येय पडता है जो धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यानमें भेद है वह विशुद्धि और स्वामीके भेदसे निश्चय करना चाहिये। भावार्थ-विशुद्धि और स्वामीके भेदसे उनमें भेद है परंतु ध्येय दोनोंका एक ही है ।।१८०।।

इदं हि दुःशकं ध्यातुं सूक्ष्मज्ञानावलंबनात्।
बोध्यमानमपि प्राज्ञैर्न च द्रागवलक्ष्यते।।१८१।।

परंतु इस स्वात्मदर्शनके लिये सूक्ष्मज्ञानका आलंबन लेना पडता है इसलिये इसका ध्यान करना अत्यंत कठिन साध्य है क्योंकि विद्वान लोग इसको बहुत समझावें तो भी वह स्वात्मदर्शन शीघ्र दिखाई नहीं पडता।।१८१।।

तस्माल्लक्ष्यं च शक्यं च दृष्टादृष्टफलं च यत्।
स्थूलं वितर्कमालंब्य तदभ्यस्यंतु धीधनाः।।१८२।।

इसलिये जो लक्ष्य (ध्येय जिसका ध्यान करना चाहिये) शक्य हो जिसका फल दृष्ट अदृष्ट दोनों रुपमें हों ऐसे किसी स्थूल वितर्क-श्रुतका आलंबन कर बुद्धिमान लोगोंको ध्यानका अभ्यास करना चाहिये।।१८२।।

आकारं मरुतापूर्यं कुंभित्वा रेफवह्निना ।
दग्ध्वा स्ववपुषा कर्म स्वतो भस्म विरेच्य च।।१८३।।

सबमें पहिले पूरक वायुके द्वारा आत्माके आकार की कल्पना करना चाहिये फिर अग्निसे स्थिर रहना चाहिये तथा अपने शरीरके साथ कर्मोंको जलाना चाहिये और फिर अपने आप उसकी भस्मका विरेचन करना चाहिये।।१८३।।

हमंत्रो नभसि ध्येयः क्षरन्नमृतमात्मनि।
तेनाऽन्यत्तद्विनिर्म्माय पीयूषमयमुज्ज्वलं।।१८४।।

फिर आकाशमें 'ह' मंत्रका ध्यान करना चाहिये, तथा कल्पना करना चाहिये कि उस ध्यान किए हुए मंक्षसे आत्मामें अमृत झर रहा है उस ध्यान किए हुए अमृतसे अमृतमय और उज्वल ऐसे दूसरे शरीरका निर्माण करना चाहिये।।१८४।।

तत्रादौ पिंडसिद्धचर्थं निर्मलीकरणाय च।
मारुतीं तैजसीमार्थीं विदध्याद्धारणां क्रमाद्।।१८५।।

उस दूसरे अमृतमय शरीरका निर्माण करते समय सबसे पहिले पिंड सिद्धिके लिये अर्थात् शरीरका निर्माण होनेके लिये तथा उसे निर्मल करनेके लिये अनुक्रमसे मारुती तैजसी और तात्वकी धारणाका प्रारंभ करना चाहिये।।१८५।।

ततः पंचनमस्कारैः पंचपिंडाक्षरान्वितैः।
पंचस्थानेषु विन्यस्तैर्विधाय सकलां क्रियाम्।।१८६।।

तदनंतर पांचों स्थानोंमें धारण किये गये पांचो पिंडाक्षररुप पंच

नमस्कार मंत्रसे समस्त क्रियाएं पूर्ण करना चाहिये।।१८६।।

पश्चादात्मानमर्हंतं ध्यायेन्निर्दिष्टलक्षणं।
सिद्धं वा ध्वस्तकर्माणममूर्त्तं ज्ञानभास्वरं।।१८७।।

इसके बाद जो अरहंत परमेष्ठीका लक्षण बताया गया है उसके समान अपने आत्माको अरहंत मानकर उसका ध्यान करना चाहिये। अथवा जिनके समस्त कर्म नष्ट होगये हैं जो अमूर्त हैं और पूर्णप्रत्यक्षज्ञानसे देदीप्यमान हैं ऐसे अपने आत्माको सिद्ध मान कर उसका ध्यान करना चाहिये।।१८७।।

नन्वनर्हंतमात्मानमर्हंतं ध्यायतां सतां।
अतस्मिंस्तद्ग्रहो भ्रान्तिर्भवतां भवतीति चेत्।।१८८।।

कदाचित् यहां पर कोई यह शंका करे कि अपना आत्मा अरहंत नहीं हैं यदि आप सज्जन लोग उसे ही अरहंत मानकर ध्यान करेंगे तो आपका वह ध्यान जिसमें जो पदार्थ नहीं है उसमें उसीके ग्रहण करनेरुप भ्रम कहलावेगा। भावार्थ-जो आत्मा अरहंत नहीं हैं उसीमें अरहंतकी कल्पनाकर ध्यान करना भ्रम कहलावेगा क्योंकि वास्तवमें वह अरहंत नहीं है।।१८८।।

तन्न चोद्यं यतोऽस्माभिर्भावाहन्नयमर्पितः।
स चार्हद्ध्याननिष्ठात्मा ततस्तत्रैव तद्ग्रहः।।१८९।।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।
अर्हद्ध्यानाविष्टो भावार्हन् स्यात्स्वयं तस्मात्।।१९०।।

परन्तु वास्तव में यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि हम लोगोंने

उसके आत्माको कल्पना किया हुआ भाव अरहंत माना है इसका भी कारण यह है कि उसका आत्मा अरहंतके ध्यान करनेमें तल्लीन है इसलिये अरहंत मे ही उसके आत्माका ग्रहण किया जाता है। इसका भी खुलासा यह है कि यह आत्मा जिसभावसे परिणत होता है उसी भावसे वह तन्मय (उसभावमय) कहलाता है इसलिये जो आत्मा अरहंतके ध्यान करनेमें तल्लीन हो रहा है उससमय वह अपने आप भाव अरहंत हो जाता है।।१८९-१९०।।

येन भावेन यद्रूपं ध्यायत्यात्मानमात्मवित्।
तेन तन्मयतां याति सोपाधिः स्फटिको यथा।।१९१।।

जिसप्रकार स्फटिकके पीछे जिस रंगकी उपाधि लगा दी जाती है (जिस रंगका पुष्प अथवा कोई भी चीज उसके पीछे रखदी जाती है) वह स्फटिक उसी रंगका दिखलाई पडता है उसीप्रकार आत्माके स्वरुपको जाननेवाला योगी अपना आत्मा चाहे जिस अवस्थामें हो उसका जिस भावसे ध्यान करता है उसभावसे वह तन्मय [उसभावमय] हो जाता है। भावार्थ-जब वह योगी अरहंतके भावसे अपने आत्माका ध्यान करेगा तो उसका वह आत्मा अरहंत रुप ही दिखलाई पडेगा।।१९१।।

अथवा भाविनो भूताः स्वपर्यायास्तदात्मकाः।
आसते द्रव्यरुपेण सर्वद्रव्येषु सर्वदा।।१९२।।

अथवा यह नियम है कि द्रव्य निक्षेपसे प्रत्येक पदार्थके अपने अपने अतीतकालमें बीते हुए भूत पर्याय और आगामी कालमें होने वाले भावी पर्याय सदा तदात्मक ही प्रतिभासित होते हैं यह ऐसा प्रतिभास समस्त द्रव्योंमें होता है। भावार्थ-इसी नियमके अनुसार इस

आत्माका आगे होने वाला अरहंतका पर्याय द्रव्यनिक्षेपसे वर्तमानकालीन आत्मामें अरहंत रुपसे ही प्रतिभासित होगा।।१९२।।

ततोऽयमर्हत्पर्यायो भावी द्रव्यात्मना सदा।
भव्येष्वास्ते सतश्चास्य ध्याने को नाम विभ्रमः।।१९३।।

भव्य जीवोंमें आगामी कालमें होनेवाला यह अरहंतका पर्याय द्रव्यनिक्षेप से सदा ही बना रहता है इसलिये इस सज्जन आत्माको ध्यान करनेमें विभ्रम किसप्रकार हो सकता है ! भावार्थ-कभी नही होसकता।।१९३।।

किं च भ्रांतं यदीदं स्यात्तदा नातः फलोदयः।
नहि मिथ्याजलाज्जातु विच्छित्तिर्जायते तृषः।।१९४।।

प्रादुर्भवंति चामुष्मात्फलानि ध्यानवर्तिनां।
धारणावशतः शांतक्रूररुपाण्यनेकधा।।१९५।।

अथवा यदि यह ही मान लिया जाय कि उस ध्यान करनेवालेको ऐसा भ्रम हो जाता है अर्थात् अरहंतके ध्यान करनेमें तल्लीन हुए अपने आत्माको अरहंत मानना भ्रांति है मिंथ्या है तो उस अवस्थामें उस ध्यानसे उसे यथेष्ट फलकी प्राप्ति भी नहीं होनी चाहिये क्योंकि झूठ मूठके जलसे कभी प्यास नहीं बुझा करती है परन्तु जैसी जैसी धारणा होती है उसीके अनुसार ध्यान करनेवाले योगियोंके इस ध्यानसे शांत और क्रूर आदि अनेक तरहके फल प्रगट होते हैं अतः अर्हंत मानना मिथ्या नही हैं।।१९४-१९५।।

गुरुपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः।
अनंतशक्तिरात्मायं मुक्तिं भुक्तिं च यच्छति।।१९६।।

गुरुके उपदेशको ग्रहण कर शांत चित्तसे ध्यान करनेवाला यह अनंत शक्तिवाला आत्मा मुक्ति और भुक्ति दोनोंको प्राप्त होता है ।।१९६।।

ध्यातोऽर्हत्सिद्धरुपेण चरमाङ्गस्य मुक्तये।
तद्ध्यानोपात्तपुण्यस्य स एवान्यस्य भुक्तये।।१९७।।

अरहंत और सिद्धके स्वरुपको ध्यान करनेवाला यदि चरमशरीरी है तो उसका वह ध्यान मोक्षका कारण होता है यदि वह चरमशरीरी नहीं है तो उस ध्यानसे वह पुण्यकी प्राप्ति करता है और उस पुण्यसे वह मुक्ति वा भोगों की प्राप्त करता है।।१९७।।

ज्ञानं श्रीरायुरारोग्यं तुष्टिपुष्टिर्वपुर्धृतिः।
यत्प्रशस्तमिहान्यच्च तत्तद्ध्यातुः प्रजायते।।१९८।।

ज्ञान, लक्ष्मी, आयु, आरोग्य, तुष्टि, पुष्टि, वपु, धृति तथा संसारमें जो कुछ प्रशंसनीय गिना जाता है वह सब ध्यान करनेवालेको प्राप्त होता है।।१९८।।

तद्ध्यानाविष्टमालोक्य प्रकंपन्ते महाग्रहाः।
नश्यंति भूतशाकिन्यः क्रूराः शाम्येंति च क्षणात्।१९९।

जो योगी अरहंत और सिद्धोंके ध्यान करनेमें तल्लीन हैं उसको देखकर महाग्रह भी कंपित हो जाते हैं, भूत शाकिनी आदि सब नष्ट हो जाते है और बडे बडे क्रूर भी क्षणभरमें शांत हो जाते हैं।।१९९।।

यो यत्कर्मप्रभुर्देवस्तद्ध्यानाविष्टमात्मनः।
ध्याता तदात्मको भूत्वा साधयत्यात्मवांछितं।।२००।।

पार्श्वनाथोभवन्मंत्री सफलीकृतविग्रहः।
महामुद्रा महामंत्रं महामंडलमाश्रितः।।२०१।।

जिस कर्मके करनेमें जो समर्थ देवता है उसका ध्यान करनेसे यह ध्यान करनेवाला पुरुष उसी कार्यको सिद्ध कर लेता है जैसे कि-महामुद्रा (ध्यानके आसन) महामंत्र (अ सि आ उ सा) और महामंडलका आश्रय कर मंत्री मरुभूत अपने शरीर को सफलकर पार्श्वनाथ स्वामी होगया।।२००-२०१।।

तैजसीप्रभृतीर्विभ्रद् धारणाश्च यथोचितं।
निग्रहादीनुदग्राणां ग्रहाणां कुरुते द्रुतं।।२०२।।

यथायोग्य तैजसी आदि धारणाको धारण करनेवाला योगी उदग्र (क्रूर) ग्रहोंका भी बहुत शीघ्र निग्रह आदि करदेता है।।२०२।।

स्वयमाखंडलो भूत्वा महामंडलमध्यगः।
किरीटकुंडली वज्री पीतमूषांम्बरादिकः।।२०३।।

महमिंडलके मध्यमें विराजमान वह योगी स्वयं इंद्रकी कल्पना करता है तथा किरीट कुंडलको धारण करनेवाला वज्रशस्त्र लिये हुए वह (?) की कल्पना करता है।।२०३।।

कुम्भकीस्तंभमुद्राद्यास्तंभनं मंत्रमुच्चरन्।
स्तंभकार्याणि सर्वाणि करोत्येकाग्रमानसः।।२०४।।

एकाग्र चित्तको धारण करनेवाला जो योगी कुंभक वायुको धारण कर स्तंभमुद्राके द्वारा स्तंभ करनेवाले मंत्रोंका उच्चारण करता है वह संसार के समस्त स्तंभनरुप कार्योंको कर डालता है।।२०४।।

स स्वयं गरुडीभूय क्ष्वेडं क्षपयति क्षणात्।
कंदर्पश्च स्वयं भूत्वा जगन्नयति वश्यतां।।२०५।।

यह योगी स्वयं गरुड होकर क्षणभरमें ही विषका नाश कर डालता है और स्वयं कामदेव होकर समस्त संसारको वश कर लेता है।।२०५।।

एवं वैश्वानरीभूय ज्वलज्ज्वालाशताकुलः।
शीतज्वरं हरत्याशु व्याप्य ज्वालाभिरातुरं।।२०६।।

इसी प्रकार वह योगी जिसमें सैंकडों ज्वालाएं जलरही हैं ऐसी अग्निका रुप धारण कर अपनी ज्वालाओंके द्वारा रोगीका स्पर्श करता है और बहूत शीघ्र उसके शीतज्वरको हरण कर लेता है।२०६।

स्वयं सुधामयो भूत्वा वर्षन्नमृतमातुरे।
अथैतमात्मसात्कृत्य दाहज्वरमपस्यति।।२०७।।

इसीतरह वह योगी स्वयं अमृतमय होकर रोगीके शरीरपर अमृतकी वर्षा करता है और उस रोगीको अमृतमय करके उसका सब दाहज्वर दूर कर देता है।।२०७।।

क्षीरोदधिमयो भूत्वा प्लावयन्नखिलं जगत्।
शांतिकं पौष्टिकं योगी विदधाति शरीरिणाम्।।२०८।।

अथवा क्षीरसागरमय होकर वह समस्त जगतको बहा देता है अथवा डुबो देता है और वही योगी जीवों के समस्त शांतिक और पौष्टिक कर्मोंको कर डालता है।।२०८।।

किमत्र बहुनोक्तेन यद्यत् कर्म चिकीर्षति।
तद्देवतामयो भूत्वा तत्तन्निर्वर्तयत्ययम्।।२०९।।

अथवा बहुत कहनेसे क्या लाभ है वह योगी जिस जिस कर्मको करना चाहता है उसी कर्मका देवता रुप होकर वह उस कामको कर डालता है।।२०९।।

शांते कर्मणि शांतात्मा क्रूरे क्रूरो भवन्नयं।
शांतक्रूराणि कर्माणि साधयत्येव साधकः।।२१०।।

शांत कर्मोंमें वह शांत हो जाता है और क्रूर कर्मों मैं वह क्रूर हो जाता है इसप्रकार सिद्ध करनेवाला वह योगी शांत और क्रूर दोनोंप्रकारके कर्मोंको सिद्ध कर लेता है।।२१०।।

आकर्षणं वशीकारः स्तम्भनं मोहनं द्रुतिः।
निर्विषीकरणं शांतिविद्वेषोच्चाटनिग्रहाः।।२११।।

एवमादीनि कार्याणि दृश्यन्ते ध्यानवर्तिनां।
ततः समरसीभावसफलत्वान्न विभ्रमः।।२१२।।

आकर्षण, वशीकार, स्तंभन, मोहन, द्रुति, निर्विषीकरण, शांति, विद्वेष, उच्चाटन, निग्रह आदि बहुत तरहके कार्य ध्यानियोंके देखे जाते हैं अतः समरसीभाव सफल हो जानेसे अर्थात् समरसीभावके पूर्ण प्रकट हो जाने से उस योगीको किसी प्रकारका विभ्रम नही होता।।२११-२१२।।

यत्पुनः पूरणं कुंभो रेचनं दहनं प्लवः।
सकलीकरणं मुद्रामंत्रमंडलधारणाः।।२१३।।

कर्म्माधिष्ठातृदेवानां संस्थानं लिंगमासनं।
प्रमाणं वाहनं वीर्यं जातिर्नामद्युतिर्दिशां।।२१४।।

भुजवक्त्रनेत्रसंख्यां भावः क्रूरस्तथेतरः।
वर्णस्पर्शस्वरोऽवस्था वस्त्रं भूषणमायुधं।।२१५।।

एवमादि यदन्यच्च शांतक्रूराय कर्मणे।
मंत्रवादादिषु प्रोक्तं तद्ध्यानस्य परिच्छदः।।२१६।।

जो पूरण, कुंभ, रेचन, दहन, प्लावन, सकलीकरण, मुद्रा, मंत्र, मंडल, धारणा तथा प्रत्येक कर्मके अधिष्ठाता जो देवता हैं उनके संस्थान, चिन्ह, आसन, प्रमाण, वाहन, वीर्य, जाति, नाम, कांति दिशा, भुजाओंकी संख्या, मुखोंकी संख्या, नेत्रोंकी संख्या, क्रूर तथा शांत भाव, वर्ण, स्पर्श, स्वर, अवस्था, वस्त्र, आभूषण और आयुध आदि तथा इनके सिवाय जो कुछ शांत और क्रूर कर्मोंके लिये आवश्यक है वह सब मंत्रवाद आदि शास्त्रों में कहा है वह सब ध्यानकी सामग्री कहलाती है।।२१३-२१६।।

यदात्रिकं फलं किंचित्फलमामुत्रिकं च यत्।
एतस्य द्वितयस्यापि ध्यानमेवाग्रकारणं।।२१७।।

इस जीवको इस लोकमें तथा परलोकमें जो कुछ फल मिलता है उन दोनों प्रकारके फलोंका मुख्यकारण एक ध्यान ही समझना चाहिये।।२१७।।

ध्यानस्य च पुनर्मुख्यो हेतुरेतच्चतुष्टयम्।
गुरुपदेशः श्रद्धानं सदाभ्यासः स्थिरं मनः।।२१८।।

तथा ध्यानके ये चार मुख्य कारण हैं गुरुका उपदेश ग्रहण करना, श्रद्धान रखना, ध्यानका सदा अभ्यास रखना और मनको स्थिर रखना।।२१८।।

अत्रैव माग्रहं कार्षुर्यद्ध्यानफलमैहिकं।
इदं हि ध्यानमाहात्म्यख्यापनाय प्रदर्शितं।।२१९।।

जो ध्यानका फल इस लोक संबंधी बतलाया गया है वह केवल ध्यानके माहात्म्य को प्रगट करनेके लिये ही दिखलाया गया है परन्तु उस लौकिक फलको प्राप्त करनेके लिये ध्यान करना उचित नही है।।२१९।।

यद्ध्यानं रौद्रमार्त्तं वा यदैहिकफलार्थिनां।
तस्मादेतत्परित्यज्य धम्य शुक्लमुपास्यतां।।२२०।।

क्योंकि इसलोक संबंधी फलोंकी इच्छा करनेवालों के जो ध्यान होता है वह आर्त और रौद्र ही होता है इसलिये दोनों ध्यानोंका परित्यागकर धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यान की ही उपासना करना चाहिये।।२२०।।

तत्त्वज्ञानमुदासीनमपूर्वकरणादिषु।
शुभाशुभमलापायाद्विशुद्धं शुक्लमभ्यधुः।।२२१।।

अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें तत्त्वज्ञान स्वरुप अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरुप, तथा उदासीन स्वरुप और शुभ अशुभ मलोंके दूर हो जानेसे विशुद्ध स्वरुप ऐसे शुक्ल ध्यान को धारण करना चाहिये ।।२२१।।

शुचिगुणयोगाच्छुक्लं कषायरजसःक्षयादुपशमाद्वा।
माणिक्यशिखावदिदं सुनिर्मलं निःप्रकंपं च।।२२२।।

कषाय रुपी रजके क्षय होनेसे अथवा उपशम होनेसे आत्माका शुद्ध स्वरुप गुण प्रगट होता है और उसके प्रगट होनेसे ध्यान शुक्ल ध्यान कहलाता है। वह शुक्ल ध्यान माणिक्यकी शिखाके समान सुनिर्मल और निप्रकंप होता है।।२२२।।

रत्नत्रयमुपादाय त्यक्त्वा बन्धनिबन्धनम्।
ध्यानमभ्यस्यतां नित्यं यदि योगिन्मुमुक्ष से।।२२३।।

हे योगी ! यदि तू मुक्ति चाहता है तो रत्नत्रयको धारण कर और बंधके कारण जो मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग आदि हैं उनको दूरकर सदा ध्यानका अभ्यास कर।।२२३।।

ध्यानाभ्यासप्रकर्षेण तुद्यन्मोहस्य योगिनः।
चरमांगस्य मुक्तिः स्यात्तदा अन्यस्य च क्रमात्।२२४।

जो योगी ध्यानका सर्वोत्तम अभ्यास करता है उसका मोहनीय कम नष्ट हो जाता है और यदि वह योगी चरमशरीरी हुआ तो उसे मोक्ष प्राप्त होता है यदि चरमशरीरी नही हुआ तो उसे क्रमसे मोक्ष प्राप्त होता है।।२२४।।

तथा ह्यचरमांगस्य ध्यानमभ्यस्यतः सदा।
निर्जरा संवरश्च स्यात्सकलाशुभकर्मणां।।२२५।।

जो योगी चरमशरीरी नही है तथा ध्यानका सदा अभ्यास करता है उसके समस्त अशुभ कर्मोंकी निर्जरा तथा संवर होता रहता है ।।२२५।।

आस्रवंति च पुण्यानि प्रचुराणि प्रतिक्षणं।
यैर्महर्द्धिर्भवत्येष त्रिदशः कल्पवासिषु।।२२६।।

तथा उसके प्रत्येक क्षणमें बहुतसे पुण्य कर्मोंका आस्रव होता रहता है जिनके कि उदयसे वह कल्पवासी देवोंमें ऋद्धियोंको धारण करनेवाला देव होता है।।२२६।।

तत्र सर्वेन्द्रियामोदि मनसः प्रीणनं परं।
सुखामृतं पिबन्नास्ते सुचिरं सुरसेवितः।।२२७।।

वहांपर समस्त इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाले, और मन को अत्यंत तुष्ट करनेवाले सुखरुपी अमृतका पान करता है और अनेक देवता उसकी सेवा करते हैं।।२२७।।

ततोऽवतीर्य मर्त्येपि चक्रवर्त्यादिसंपदः।
चिरं भुक्त्वा स्वयं मुक्त्वा दीक्षां दैगंबरीं श्रितः।२२८।

वहांसे अवतीर्ण होकर मनुष्य लोकमें आता है और बहुत दिनतक चक्रवर्ती आदिकी संपदाओंका उपभोग करता है फिर उन्हे स्वयं छोडकर दिगंबरी दीक्षा धारण करता है।।२२८।।

वज्रकायः स हि ध्यात्वा शुक्लं ध्यानं चतुर्विधं।
विधूयाष्टापि कर्म्माणि श्रयते मोक्षमक्षयं।।२२९।।

वज्रवृषभनाराच संहननको धारण करनेवाला वह चारों प्रकारके शुक्ल ध्यानको धारण करता है और आठों कर्मोंको नष्टकर अविनाशी मोक्षको प्राप्त होता है।।२२९।।

आत्यंतिकः स्वहेतोर्यो विश्लेषो जीवकर्मणोः।
स मोक्षः फलमेतस्य ज्ञानाद्याः क्षायिका गुणाः।।२३०।

जीव और कर्मोंका जो अपने ही कारणों से अत्यंत विश्लेष हो जाना है, आत्मासे कर्मोंका बिल्कुल अलग हो जाना है उसे मोक्ष कहते हैं और क्षायिकज्ञान आदि गुणोंका प्रगट हो जाना उस मोक्षका फल होता है।।२३०।।

कर्मबंधनविध्वंसादूर्ध्वव्रज्यास्वभावतः।
क्षणेनैकेन मुक्तात्मा जगच्चूडाग्रमृच्छति।।२३१।।

एक तौ कर्मोंका बंधन नष्ट हो जानेसे और दूसरे आत्मा का ऊर्ध्व गमन स्वभाव होनेसे वह मुक्त आत्मा एक समयमें जगतके अग्रभागपर जा विराजमान होता है।।२३१।।

पुन्सः संहारविस्तारौ संसारे कर्मनिर्मितौ।
मुक्तौ तु तस्य तौ न स्तः क्षयात्तद्धेतुकर्मणां।।२३२।।

संसारमें जीवोंके प्रदेशोंका जो संकोच विस्तार होता है वह कर्मोंके उदयसे होता है इसलिये मुक्त होनेपर वह संकोच विस्तार नही हो सकता क्योंकि संकोच विस्तारके कारण जो कर्म हैं वे नष्ट हो जाते हैं।।२३२।।

ततः सोऽनन्तरत्यक्तस्वशरीरप्रमाणतः।
किंचिदूनस्तदाकारस्तत्रास्ते स्वगुणात्मकः।।२३३।।

इसलिये वह मुक्त जीव अपने छोड़े हुए शरीरके प्रमाणसे कुछ कम आकारमें रहता है तथा मुक्त होते समय जो शरीरका आकार

है उसी आकारका रहता है और अपने आत्माके गुणोंसे भरपूर रहता है।।२३३।।

स्वरुपावस्थितिः पुंसस्तदा प्रक्षीणकर्मणः।
नाभावो नाप्यचैतन्यं न चैतन्यमनर्थकं।।२३४।।

कर्मक्षय होनेके बाद इस पुरुषकी अवस्था स्वाभाविक रहती है इसलिये मुक्त अवस्थामें न तो जीवका अभाव कह सकते हैं, न अचेतन कह सकते हैं और न चेतनकी व्यर्थता कह सकते हैं ।।२३४।।

स्वरुपं सर्वजीवानां स्वपरस्य प्रकाशनं।
भानुमंडलवत्तेषां परस्मादप्रकाशनं।।२३५।।

सूर्यमंडलके समान समस्त जीवोंका स्वरुप स्वपरको (अपने आत्माको तथा आत्मेतर समस्त पदार्थोंको) प्रकाश करना है जैसे सूर्य अन्य किसीसे प्रकाशित नहीं होता वैसे जीव भी अन्य किसीसे प्रकाशित नही होसकता।।२३५।।

तिष्ठत्येव स्वरुपेण क्षीणे कर्मणि पौरुषः।
यथा मणिः स्वहेतुभ्यः क्षीणे सांसर्गिके मले।।२३६।।

जिसप्रकार सांसर्गिक मलके दूर होनेपर मणि अपने हेतुओंसे ठहरता है उसीप्रकार कर्मोंके नाश होनेपर यह आत्मा भी अपने स्वभावसे ही ठहरता है।।२३६।।

न मुह्यति न संशेते न स्वार्थानध्यवस्यति।
न रज्यते न च द्वेष्टि किंतु स्वस्थः प्रतिक्षणं।।२३७।।

उससमय यह मुक्तात्मा न तो मोहित होता है न सोता है न अपने स्वार्थोंकी और झुकता है, न राग करता है न द्वेष करता है किंतु वह सदा स्वस्थ ही रहता है।।२३७।।

त्रिकालविषयं ज्ञेयमात्मानं च यथास्थितं।
जानन् पश्यंश्च निःशेषमुदास्ते स तदा प्रभुः।।२३८।।

उससमय वह प्रभु आत्मा भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों काल संबंधी समस्त ज्ञेय पदार्थोंको तथा अपने स्वरुपमें ठहरे हुए अपने आत्माको देखता और जानता हुआ उदासीन रुपसे रहता है।।२३८।।

अनंतज्ञानदृग्वीर्यवैतृष्णयमयमव्ययं।
सुखं चानुभवत्येष तत्रातींद्रियमच्युतः।।२३९।।

कभी न नाश होनेवाला यह मुक्तात्मा अतींद्रिय, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्यमय, तृष्णा रहित और नाश रहित ऐसे अनंत सुखका अनुभव करता है।।२३९।।

ननु चाक्षैस्तदर्थानामुनभोक्तुः सुखं भवेत्।
अतीन्द्रियेषु मुक्तेषु मोक्षं तत्कीदृशं सुखं।।२४०।।

कदाचित् कोई यहांपर यह शंका करे कि इस संसार में जो इन्द्रियोंके द्वारा पदार्थोंका अनुभव करता है उसी को सुख मिलसकता है जो जीव मुक्त हो गया है उसके इन्द्रियां नहीं है तब मोक्षमें सुखकी प्राप्ति कैसे होसकती है।।२४०।।

इति चेन्मन्यसे मोहात्तन्न श्रेयो मतं यतः।
नाद्यापि वत्स त्वं वेत्सि स्वरुपं सुखदुःखयो।।२४१।।

उसके लिये आचार्य कहते हैं कि-तू मोहनीय कर्म के उदयसे ऐसा मानता है इसलिये तेरा यह मत वा यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि हे वत्स ! अभी तक तू सुख दुःखका स्वरुप ही नहीं जानता है।।१४१।।

आत्मायत्तं निराबाधमतींद्रियमनश्वरं।
घातिकर्मक्षयोद्भूतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः।।२४२।।

जो केवल आत्माके आधीन है, जिसमें कोई किसी तरहकी बाधा नहीं है जो अतींद्रिय है कभी नाश होनेवाला नहीं है और जो घातिया कर्मोंके नाश होनेसे प्रगट हुआ है ऐसा मोक्ष सुख ही वास्तवमें सुख कहलाता है।।२४२।।

यत्तु सांसारिकं सौख्यं रागात्मकमशाश्वतं।
स्वपरद्रव्यसंभूतं तृष्णासंतापकारणम्।।२४३।।

मोहद्रोहमदक्रोधमायालोभनिबंधनं।
दुःखकारणबन्धस्य हेतुत्वाद्दुखमेव तत्।।२४४।।

तथा जो सांसारिक सुख रागद्वेष रुप है, क्षण क्षण में नष्ट होनेवाला है, आत्मा और अन्य पुद्गलादि द्रव्यों से प्रगट होता है, जो तृष्णा और संतापका कारण है और मोह द्रोह, मद क्रोध माया लोभ आदि विकारोंका कारण है वह सब दुख देने वाले कर्म बंधका कारण है इसलिये वह सुख नहीं किंतु दुःख ही कहलाता है ।।२४३-२४४।।

तन्मोहस्यैव माहात्म्यं विषयेभ्योऽपि यत् सुखं।
यत्पटोलमपि स्वादु श्लेष्मणस्तद्विजृम्भितं।।२४५।।

इस जीवको जो विषयोंसे भी सुख प्रतीत होता है वह केवल मोहनीय कर्मका ही माहात्म्य है, क्योंकि पटोल भी जो स्वादिष्ट जाना पडता है वह केवल श्लेष्माके कारण ही जान पडता है (वास्तवमें पटोल स्वादिष्ट नहीं है) इसी प्रकार वास्तवमें विषयोंमें भी सुख नही है।।२४५।।

यदत्र चक्रिणां सौख्यं यच्च स्वर्गे दिवौकसां।
कलयापि न तत्तुल्यं सुखस्य परमात्मनां।।२४६।।

इस संसारमें जो चक्रवर्तियोंको सुख मिलता है स्वर्ग में देवोंको जो सुख मिलता है वह परमात्माओंके (मुक्त आत्माओंके) सुखकी एक कलाके समान भी नही हो सकता।।२४६।।

अत एवोत्तमो मोक्षः पुरुषार्थेषु पठ्यते।
स च स्याद्वादिनामेवानान्येषामात्मविद्विषां।।२४७।।

इसीलिये चारों पुरुषार्थोंमें एक मोक्ष ही सबसे उत्तम पुरुषार्थ माना जाता है और वह भी स्याद्वादको मानने वाले जैनियोंके ही यहां है। आत्मासे द्वेष रखनेवाले (आत्माका वास्तविक स्वरुप न माननेवाले) अन्य मतियोंके यहां नहीं।।२४७।।

यद्वा बंधश्च मोक्षश्च तद्धेतू च चतुष्टयं।
नास्त्येवैकांतरक्तानां तद्व्यापकमनिच्छतां।।२४८।।

अथवा बंध और मोक्ष तथा इन दोनों के कारण ये चारों ही एकांत वादियोंके नही हैं क्योंकि वे इन चारोंको व्यापक नही मानते हैं।।२४८।।

अनेकांतात्मकत्वेन व्याप्तावत्र क्रमाक्रमौ।
ताभ्यार्थक्रिया व्याप्ता तयास्तित्वं चतुष्टये।।२४९।।

क्रम और अक्रम अर्थात् अस्तित्व नास्तित्व और वक्तव्य अवक्तव्य ये दोनों अनेकांत रुपसे ही व्याप्त है तथा क्रम अक्रम इन दोनोंसे ही इस संसारमें अर्थ क्रिया व्याप्त है और अर्थ क्रियासे ही बंध मोक्ष तथा इन दोनोंके हेतु इन चारोंका अस्तित्व रहता है।२४९।

मूलव्याप्तुर्निवृत्तौ तु क्रमाक्रमनिवृत्तितः।
क्रियाकारकयोर्भ्रंशान्न स्यादेतच्चतुष्टयं।।२५०।।

इसलिये इन सबका मूल व्यापक अनेकांत है अनेकांत न माननेसे क्रम अक्रम भी नहीं बन सकते तथा क्रम अक्रमके न होनेसे क्रियाकारकका नाश होता है और क्रियाकारकका नाश होनेसे बंध मोक्ष तथा इन दोनोंके हेतु इन चारोंका अस्तित्व नहीं हो सकता ।।२५०।।

ततो व्याप्त्या समस्तस्य प्रसिद्धश्च प्रमाणतः।
चतुष्टयसदिच्छद्भिरनेकांतोऽवगम्यतां।।२५१।।

इसलिये जो मोक्ष बंध और इन दोनोंके हेतुओंको चाहते हैं उन्हें जो व्याप्त है और जिसका प्रमाणसे मानना प्रसिद्ध है ऐसा अनेकांत अवश्य मानना चाहिये।।२५१।।

सारश्चतुष्टयेप्यस्मिन्मोक्षः सद्ध्यानपूर्वकः।
इति मत्वा मया किंचिद् ध्यानमेव प्रपंचितं।।२५२।।

बंध मोक्ष और दोनोंके कारणोंमें एक मोक्ष ही प्रधान तथा सार

है और उस मोक्षकी प्राप्ति श्रेष्ठ ध्यान पूर्वक ही होती है यही समझकर मैने (श्रीमन्नागसेनमुनिने) कुछ ध्यानका ही विस्तार लिखा है।।२५२।।

यद्यप्यत्यंतगंभीरमभूमिर्मादृशामिदम्।
प्रावर्त्तिषि तथाप्यत्र ध्यानभक्तिप्रचोदितः।।२५३।।

यद्यपि ध्यानका स्वरुप अत्यंत गंभीर है और हमारे ऐसे पुरुषोंके कहनेके सर्वथा अयोग्य है तथापि ध्यानकी भक्तिसे प्रेरित होकर ही मुझे इसमें प्रवृत्त होना पडा है।।२५३।।

यदत्र स्खलितं किंचिच्छाद्मस्थ्यादर्थशब्दयोः।
तन्मे भक्तिप्रधानस्य क्षमतां श्रुतदेवता।।२५४।।

मैं केवल भक्तिको ही प्रधान मानता हूं इसलिये अल्पज्ञानी होनेके कारण जो कुछ शब्द और अर्थकी भूल होगई हो तो श्रुतदेवता मुझे क्षमा करे।।२५४।।

वस्तुयाथात्म्यविज्ञानश्रद्धानध्यानसंपदः।
भवंतु भव्यसत्त्वानां स्वस्वरुपोपलब्धये।।२५५।।

पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान, यथार्थ श्रद्धान और ध्यान रुपी संपदाए भव्य जीवोंको अपने शुद्ध आत्माके स्वरुपकी प्राप्ति होनेके लिये हों ।।२५५।।

प्रशस्ति।

श्रीवीरचन्द्रशुभदेवमहेंद्रदेवाः
शास्त्राय यस्य गुरुवो विजयामरश्च।

दीक्षागुरुः पुनरजायत पुण्यमूर्तिः
श्रीनागसेनमुनिरुद्घचरित्रकीर्तिः।।२५६।।

जिनके श्रीवीरचंद्रदेव, शुभचंद्रदेव और महेंद्रदेव शास्त्र पढानेवाले विद्यागुरु हुए थे तथा पुण्यमूर्ति विजयदेव दीक्षागुरु हुए थे तथा जिनके चारित्रकी कीर्ति चारों और फैल रही थी ऐसे एक नागसेन नामके मुनि हुए थे।।२५६।।

तेन प्रवृद्धधिषणेन गुरुपदेश-
मासाद्य सिद्धिसुखसेंपदुपायभूतं।
तत्त्वानुशासनमिदं जगतो हिताय
श्रीनागसेनविदुषा व्यरचि स्फुटार्थं।।२५७।।

उन्हीं अत्यंत विद्वान और बहुत ही बढी हुई बुद्धिवाले नागसेन मुनिने गुरुके उपदेशको स्वीकारकर संसारका हित करनेकेलिये जिसका अर्थ अत्यंत सरल है और जो मोक्षसुखरुपी संपदाका कारण है ऐसा यह तत्त्वानुशासन नामका ग्रन्थ बनाया।।२५७।।

जिनेंद्राः सद्ध्यानज्वलनहुतघातिप्रकृतयः
प्रसिद्धाः सिद्धाश्च प्रहततमसः सिद्धिनिलयाः।
सदाचार्या वर्याः सकलसदुपाध्यायमुनयः
पुनंतु स्वांतं नस्त्रिजगदधिकाः पंच गुरुवः।।२५८।।

श्रेष्ठ ध्यानरुपी अग्निमें घातिया कर्मोंकी सब प्रकृत्योंका होम करनेवाले श्रीजिनेंद्रदेव, समस्त कर्मरुपी अंधकार को नाश करनेवाले तथा सिद्धशिलापर विराजमान ऐसे प्रसिद्ध सिद्धभगवान, श्रेष्ठ आचार्य, सब उपाध्याय और सब साधु ये तीनों लोकोंमें सर्वोत्तम पांचों परमेष्ठी

मेरे अंतःकरणको पवित्र करें।।२५८।।

देहज्योतिषि यस्य मज़ति जगत् दुग्धांबुराशाविव
ज्ञानज्योतिषि च स्फुटत्यतितरामोंभूर्भुवःस्वस्त्रयी
शब्दज्योतिषि यस्य दर्पण इव स्वार्थाश्चकासंत्यमी
स श्रीमानमरार्च्चितो जिनपतिर्ज्योतिस्त्रयायास्तु नः।२५८।

क्षीरसागरके समान जिनके शरीरकी निर्मल कांतिमें यह समस्त जगत स्नान करता है, जिनके ज्ञानके प्रकाशमें ओंभूर्भुवः स्वः ये तीनों अत्यंत प्रकाशमान होते है और दर्पणके समान जिनके शब्दरुप प्रकाशमें (दिव्यध्वनिमें) ये सब जीव तथा जीवेतर सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं तथा जो अंतरंग बहिरंग लक्ष्मीको धारण करते हैं और समस्त इंद्रादि देव जिनकी पूजा करते हैं ऐसे भगवान श्रीजिनेंद्रदेव हम लोगोंको शरीरकी ज्योति (परमौदारिक शरीर) ज्ञानकी ज्योति (केवल ज्ञान) और शब्दकी ज्योति (दिव्य ध्वनि) इन तीनोंके देनेवाले हों।।२५८।।

इति श्रीमन्नागसेनमुनिविरचितः तत्त्वानुशासनसिद्धान्तः समाप्तः।।

तत्त्वानुशासनके श्लोकोंकी अकारादि क्रम-सूची

श्लोक	पृष्ठ
अ, आ	
अस्ति वास्तवसर्वज्ञः	०१
अन्यथावस्थितेष्वर्थे	०३
अभिन्नकर्तृ कर्मादि	०८
अभ्येत्य सम्यगाचार्यं	१२
अप्रमत्तः प्रमत्तश्च	१३
अथवांगति जानातीत्य	१७
अभावो वा निरोधः	१८
अत्रेदानी निषेधति	२३
अन्यत्र वा क्वचिद्देशे	२५
अभिन्नमाद्यमन्यत्तु	२६
अकारादिहकारान्ताः	२९
अनादि निधने द्रव्ये	३०
अर्थव्यंजनपर्याया	३१
अनंतदर्शनज्ञान	३२
अन्यच्छरीरमन्योऽहं	३९
अचेतनं भवे नाहं	३९
अत एवान्यशून्योऽपि	४६
अन्यात्माभावो नैरात्म्यं	४७
अथवा भाविनो	५१
अत्रैव माग्रहं कार्षु	५८
अनंत ज्ञानदृग्वीय	६३
अत एवोत्तमो मोक्षः	६५
अनेकांतात्मकत्वेन	६६
आत्मनः परिणामो यो	१४
आज्ञापायो विपाकं च	२७
आदौ मध्येऽवसाने	२७
आत्मानमन्यसंपृक्तं	४७
आकारं मरुतापूर्यं	४९
आकर्षणं वशीकारः	५६
आस्रवंति च पुण्यानि	६०
आत्यंतिकः स्वहेतोर्यो	६१
आत्मायत्तं निरावाध	६४
आर्त्तं रौद्रं च दुर्ध्यानं	१०
इ, ई	
इति संक्षेपतो ग्राह्य	११
इति चेन्मन्यसे मोह	६३
इदं हि दुःशकं	४८
इष्ट ध्येये स्थिरा	२०
इंद्रियाणां प्रवृत्तौ च	२१
इत्यादीन्मंत्रिणो	२९
उ, ऊ	
उभयस्मिन्निरुद्धे	४४

श्लोक	पृष्ठ
ए, ऐ	
एकाग्रचिंतारोधो	१६
एकं प्रधानमित्याहु	१६
एकाग्रग्रहणं चात्र	१६
एकं च कर्त्ता करणं	२०
एवंविधमिदं वस्तु	३१
एवं नामादिभेदेन	३५
एवं सम्यग्विनिश्चित्य	४२
एतद् द्वयोरपि ध्येयं	४८
एवं वैश्वानरीभूय	५५
एवमादीनि कार्याणि	५६
एवमादि यदन्यच्च	५७
क	
कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यो	४३
कर्माधिष्ठातृदेवानां	५७
कर्मबंधनविध्वंसा	६१
किमत्र वहुनोक्तेन	३६
किमत्र वहुनोक्तेन यद्यत्	५६
किं च भ्रांतं यदीदं	५२
कुंभकीस्तंभमुद्राद्या	५४
ग	
गणभृद्वलयोपेतं	२९
गुप्तेन्द्रियमना ध्याता	११
गुरुपदेशमासाद्य	५२

श्लोक	पृष्ठ
च	
चरितारो न चेत्सन्ति	२४
चतुस्त्रिंशन्महाश्चर्यैः	३३
चिंताभावो न जैनानां	४२
चेतसा वचसा तन्वा	०८
चेतनोऽचेतनो वार्थो	३०
ज	
जन्माभिषेक प्रमुख	३३
जिनेन्द्र प्रतिबिंबानि	२९
जीवादयो नवाप्यर्था	०७
जीवादिद्रव्ययाथात्म्य	४०
त	
तत्र बंधः स हेतुभ्यः	०२
तदर्थानिन्द्रियैर्गृह्णान्	०६
तस्मादेतस्य मोहस्य	०६
ततस्त्वं बंधहेतूनां	०७
तत्रासन्नीभवेन्मुक्तिः	१२
ततोऽनपेतं यज्ज्ञातं	१५
तदास्य योगिनो	१७
तत्रात्मन्यसहाये	१८
तत्त्वज्ञानमुदासीन	५८
तथा ह्यचरमांगस्य	५९
तत्र सर्वेन्द्रियामोदि	६०
ततोऽवतीर्य मत्येंपि	६०

श्लोक	पृष्ठ
ततः सोऽनन्तरत्यक्त	६१
तन्मोस्यैव माहात्म्यं	६४
तत्रापि तत्त्वतः पंच	३२
तथाद्यमाप्तमाप्तानां	३३
तदा तथा विधध्यान	३६
तस्मान्मोहाप्रहाणाय	३८
तथा हि चेतनोऽसंख्य	३९
तदेवानुभवंश्चाय	४५
तदा च परमैक	४५
ततश्च यज्जगुर्मुक्त्ये	४६
तस्माल्लक्ष्यं च शक्यं	४८
तत्रदौ पिंडसिद्ध्यर्थं	४९
ततः पंचनमस्कारैः	४९
तन्न चोद्यं यतोऽस्मा	५०
ततोऽयमर्हत्पर्यायो	५२
तद्ध्यानाविष्टमालोक्य	५३
ततो व्याप्त्या समस्त	६६
तापत्रयोपतप्तेभ्यो	०२
ताभ्यां पुनः कषायाः	०५
तादृक्सामग्रयभावे	१०
तिष्ठत्येव स्वरुपेण	६२
तेभ्यः कर्माणि बध्यन्ते	०५
तेज सामुत्तमं तेजो	३३
तैजसी प्रभृतीर्विभ्रद्	५४
द	
दिधासुः स्वं परं	३८
दूरमुत्सृज्य भूभागं	३३
देशः कालश्च सोऽन्वेष्य	११
द्रव्यक्षेत्रादिसामग्री	१३
द्रव्यपर्याययोर्मध्ये	१६
द्रव्यार्थिकनयादेकः	१८
द्रव्यध्येयं वहिर्वस्तु	३५
दृग्बोधसाम्यरुप	४३
ध	
धर्मादि श्रद्धान सम्यक्त्व	०९
धातुपिंडे स्थितश्चैवं	३५
न	
न हीन्द्रियधिया दृश्यं	४४
नन्वनर्हंतमात्मान	५०
न मुह्यति न संशेते	६२
ननु चाक्षैस्तदर्था	६३
नासाग्रन्यस्त निष्पंद	२५
नाम च स्थापनं द्रव्यं	२७
नान्योऽस्मि नाहम	३९
निश्चयनयेन भणित	०९
निरस्त निद्रो निर्भीति	२५
निश्चयाद् व्यवहाराच्च	२६
प	

श्लोक	पृष्ठ
परस्परपरावृत्ताः सर्वे	४६
पश्यन्नात्माननमैक	४७
पश्चादात्मानमर्हंतं	५०
परिणमते येनात्मा	५०
पार्श्वनाथो भवन्मंत्री	५४
पुरुषः पुद्गलः कालो	३१
पुन्मः संहार विस्तारौ	६१
पूर्वं श्रुतेन संस्कारं	३८
प्रमाणनयनिक्षेपैर्यो	०८
प्रत्याहृत्य यदा चिंतां	१७
प्रत्याहृत्याक्षलुंटा	२५
प्रभास्वल्लक्षणाकीर्ण	३३
प्रादुर्भवंति चामुष्मा	५२
ब	
बंधो निबंधनं चास्य	०२
बंधस्य कार्यः संसारः	०३
बंधहेतुषु सर्वेषुमोहाश्च	०४
बंधहेतुषु मुख्येषु	०६
बंधहेतुविनाशस्तु	०७
भ	
भूजवक्त्रनेत्रसंख्या	५७
भूतले वा शिलाषट्टे	२५
म	
ममाहंकारनामानौ	०४
महासत्त्वः परित्यक्त	१२
मत्तः कायादयो भिन्ना	४२
माध्यस्थ्यं समतोपेक्षा	३७
मिथ्याज्ञानान्विता	०५
मुक्तलोकद्वयपेक्षः	१२
मूख्योपचारभेदेन	१३
मूल व्याप्तुर्निवृत्तौ तु	६६
मोक्षस्तत्कारणं	०२
मोक्षहेतुः पुनर्द्वेधा	०८
मोहद्रोहमदक्रोधमाया	६४
य	
यस्तूत्तमक्षमादिः	१५
यत्पुनर्वज्रकायस्य	२३
यथाभ्यासेन शास्त्राणि	२४
यथोक्तलक्षणो ध्याता	२४
यथैकमेकदा द्रव्य	३०
यद्विवृत्तं यथापूर्वं	३०
यदा ध्यानबलाद्ध्याता	३६
यस्तु नालंबते श्रौतीं	३८
यन्न चेतयते किंचिन्ना	४१
यदचेतत्तथा पूर्वं	४१
यन्मिथ्याभि निवेशेन	४४
यथा निर्वातदेशस्थः	४५
यथा यथा समाध्याता	४७

श्लोक	पृष्ठ
यत्पुनः पूरणं कुंभो	५६
यदात्रिकं फलं किंचित्	५७
यद्ध्यानं रौद्रमार्त्तं वा	५८
यत्तु सांसारिकं सौख्यं	६४
यदत्र चक्रिणां सौख्यं	६५
यद्वा वंघश्च मोक्षश्च	६५
यद्यप्यत्यंत गंभीरमभूमि	६७
यदत्त स्खलितं किंचिच्छा	६७
ये कर्मकृता भावाः	०५
येनोपायेन शक्येत	२१
येऽत्राहुर्न हि कालोऽयं	२२
येन भावेन यद्रूपं	५१
यो मध्यस्थः पश्यति	०९
योऽत्र स्वस्वामिसंबंधो	४०
यो यत्कर्मप्रभुर्देव	५३
ध्याता ध्यानं फलं ध्येयं	१०
ध्यायते येन तद्ध्यानं	१९
ध्येयार्थालंबनं	१९
ध्यातरि ध्यायते	२०
ध्यातारश्चेन्न सन्त्यद्य	२३
ध्यायेदइऊएओ च	२८
ध्याने हि बिभ्रते स्थैर्यं	३५
ध्यानस्य च पुनर्मुख्यो	५७
ध्यातोऽर्हत्सिद्ध	५३
ध्यानाभ्यास प्रकर्षेण	५९
व्यवहारनयादेवं	३७
स्युर्मिथ्यादर्शनज्ञान	०३
स्यात्सम्यग्दर्शनज्ञान	०७
र	
रत्नत्रयमुपादाय	५९
ल	
लोकाग्रशिखरारुढ़	३२
व	
वज्रसंहननोपेताः	१०
वपुषोऽप्रतिभासेऽपि	४४
वज्रकायः स हि ध्यात्वा	६०
वस्तुयाथात्म्यविज्ञान	६७
वाच्यस्य वाचकं	२७
वीतरागोऽप्ययं देवो	३४
वेद्यत्वं वेदकत्वं च	४२
वृत्तिमोहोदयाज्जन्तोः	०४
स्वात्मानं स्वात्मनि	२०
स्वाध्यायः परमास्ताव	२२
स्वाध्यायाद्ध्यानम	२२
स्वयमिष्टं न च द्विष्टं	४१
स्वपरज्ञप्तिरुपत्वान्न	४३
स्वयमाखंडलो भूत्वा	५४
स्वयं सुधामयो भूत्वा	५५

श्लोक	पृष्ठ
स्वरुपावस्थितिः पुंस	६२
स्वरुपं सर्वजीवानां	६२
व्रुवता ध्यानशब्दार्थं	३७
श	
शश्वदनात्मीयेषु	०४
शांते कर्मणि शांतात्मा	५६
शुचिगुणयोगाच्छुक्लं	५९
शून्यीभवदिदं विश्वं	१५
शून्यागारे गुहायां वा	२५
स	
स च मुक्तिहेतुरिद्धो	०९
सम्यग्निणीतजीवादि	१२
सद्दृष्टिज्ञानवृतानि	१४
सम्यग्गुरुपदेशेन	२८
सप्ताक्षरं महामंत्रं	२८
सहवृता गुणास्तत्र	३१
सति हि ज्ञातरि ज्ञेयं	३२
सम्यग्ज्ञानादिसंपन्ना	३४
सद्द्रव्यमस्मि चिदहं	४०
सन्नेवाहं सदाप्यस्मि	४१
समाधिस्थेन यद्यात्मा	४५
स स्वयं गरुडीभूय	५५
सामग्रीतः प्रकृष्टाया	१४
साकारं च निराकार	३२
सारश्चतुष्टयेप्यस्मि	६६
सिद्ध स्वार्थानशेषार्थ	०१
सोऽयं समरसीभाव	३६
संगत्यागः कषायाणां	२१
संचिंतयन्ननुपेक्षाः	२२
संक्षेपेण यदत्रोक्तं	३७
श्रुतेन विकलेनापि ध्याता	१४
श्रुतज्ञान मुदासीनं	१८
श्रुतज्ञानेन मनसा	१९
ह	
हमंत्रो नभसि ध्येयः	४९
हृत्पंकजे चतुःपत्रे	२८
हृदयेऽष्टदलं पद्मं	२८
क्ष	
क्षीरोदधिमयो भूत्वा	५५
त्र	
त्रिकाल विषयं ज्ञेय	६३
ज्ञ	
ज्ञानावृत्युदयादर्थे	०३
ज्ञानादर्थांतरादात्मा	१९
ज्ञानवैराग्यरज्जूभ्यां	२१
ज्ञानं श्रीरायुरारोग्यं	५३